सस्ता साहित्य मण्डल
सर्वोदय साहित्य माला : निन्नानवेवां ग्रंथ

---

[९९]

टॉल्स्टॉय ग्रंथावली : पहली पुस्तक

मेरी मुक्ति की कहानी

टॉल्स्टॉय के 'My Confession' और 'My Recollections'
का अनुवाद

अनुवादक
रामनाथ 'सुमन'
परमेश्वरीदयाल विद्यार्थी

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
शाखायें
दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय,
मन्त्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

संस्करण
अक्तूबर, १९४० २०००
मूल्य
आठ आना

मुद्रक,
श्रीनाथदास अग्रवाल,
टाइमटेबुल प्रेस, बनारस

काउण्ट टॉल्स्टॉय

मेरी मुक्ति की कहानी

: १ :

मेरा वपतिस्मा कट्टर सनातनी ईसाई सम्प्रदाय के अनुसार हुआ और उसी में मेरा पालन-पोषण हुआ। मुझे वचपन में, और लड़कपन तथा जवानी-भर, इसी की तालीम दी गई। लेकिन जव मैं १८ साल की उम्र में यूनिवर्सिटी के दूसरे कोर्स के वाद अलग हुआ तो जो वातें मुझे सिखाई गई थीं उनमें से किसी में भी मेरा विश्वास न रह गया था।

जिन थोड़ी वातों की मुझे याद है उनकी कसौटी पर कसकर अगर फैसला करें तो कह सकता हूँ कि मुझे कभी पक्का विश्वास नहीं रहा, सिर्फ़ इतना ही कि मुझे जो कुछ सिखाया-पढाया जाता था और मेरे इर्द-गिर्द के बड़े-बूढे लोग जिन वातों को मानते थे उन्हीं पर मै भी भरोसा कर लेता था। मेरा यह भरोसा भी बड़ा डावाँडोल था।

मुझे याद है कि जव मै पूरे ग्यारह साल का भी नही था, तव व्याकरण-शाला का व्लाडीमीर मिलयूटिन नाम का छात्र (जिसकी वहुत दिन हुए मृत्यु हो गई) एक रविवार को हमारे यहाँ आया और एक सवसे ताज़ी नायाव वात हमें सुनाई, जिसकी खोज उसके स्कूल मे हुई थी। खोज यह थी कि कोई ईश्वर नहीं है और उसके वारे मे हम लोगों को जो कुछ सिखाया जाता है वह सव वनावटी है। (यह घटना १८३८ ई० की है)। मुझे याद आता है कि मेरे वड़े भाइयों को इस खवर में कितनी दिलचस्पी हुई थी। उन्होंने मुझे भी अपने मशविरे में शामिल किया; हम सव के सव खूव उत्तेजित हो गये थे और हम सव ने यह मंजूर किया कि यह ख़वर वड़ी दिलचस्प है और विल्कुल मुमकिन है।

मुझे यह भी याद है कि जव मेरे वडे भाई दमित्री ने, जो उस वक्त यूनिवर्सिटी में पढ रहे थे, एकाएक अपने स्वाभाविक जोश-खरोश के साथ

धर्म की उपासना शुरू की, गिर्जे की सब प्रार्थनाओं एवं उपदेशों में हिस्सा लेना आरम्भ कर दिया, और उपवास करने तथा पवित्र एवं सदाचारपूर्ण जीवन का आचरण करने लगे तब हम सब—हमारे बड़े-बूढ़े तक—बराबर उनकी हँसी उड़ाते और न मालूम किस वजह से उनको 'नूह' कहते थे। उस जमाने में मुज़िन-पुटिकन कज़ान यूनिवर्सिटी के प्रबंधक थे। एक बार उन्होंने हमें अपने घर नाच देखने का न्यौता दिया। मुझे याद है कि उस वक्त हमारे भाई उनका न्यौता मंजूर नहीं कर रहे थे, तब पुटिकन ने व्यंग से भरी यह दलील पेश करके उनको किसी तरह राज़ी किया कि डेविड तक आर्क के सामने नाचे थे। मेरे बड़े-बूढ़ो के इन मज़ाकों की तरफ़ मेरी भी हमदर्दी तो रहती ही थी और उनसे मैंने यह नतीजा निकाला था कि गो प्रश्नोत्तरपाठ (धर्मपुस्तक) की जानकारी और गिर्जे मे जाना ज़रूरी है, पर किसी को इन बातो को ज्यादा महत्त्व नहीं देना चाहिए। मुझे यह भी याद है कि जब मै बहुत छोटा था, तब मैने वाल्टेयर की रचनाएँ पढीं और धर्म के प्रति उसके उपहासों से मुझे दु:ख तो क्या होता, उलटे कुछ मनोरंजन ही होता था।

धर्म की आस्था से मेरा स्खलन ठीक वैसे ही हुआ जैसा हमारे समान तालीम पाये हुए लोगों मे अक्सर देखा जाता है। मैं समझता हूँ कि ज्यादातर मामलों मे यह बात यो होती है और सबकी तरह एक आदमी ऐसे उसूलों के आधार पर ज़िन्दगी बसर करता है जिनका धर्म-विचारो से न सिर्फ़ कोई ताल्लुक नही होता, बल्कि आम तौर से वे उनके विरोधी होते है। धर्म-विचार ज़िन्दगी में कोई हिस्सा नहीं लेता, न दूसरो के साथ बर्ताव करने मे ही उसके मुताबिक आचरण किया जाता है और आदमी अपनी ज़िन्दगी मे तो उस पर ध्यान ही नही देता। धर्म-विचार या धर्म-सिद्धान्त ज़िन्दगी से अलग-अलग और दूर-दूर रहकर माने जाते है और उनका जीवन से कोई सम्बन्ध नही होता। अगर कही वह दिखाई भी पड़ता है तो वह ज़िन्दगी से अलग एक बाहरी घटना या बात की सूरत में ही दिखाई पड़ता है।

जैसी हालत इस वक्त है वैसी ही तब भी थी। किसी की ज़िन्दगी और चलन या आचरण से यह फ़ैसला करना कि कोई आदमी आस्तिक है या नहीं, असंभव था और असंभव है। अगर अपने को खुलेआम शुद्ध वा कट्टर धार्मिक कहनेवाले और धर्ममत से इन्कार करनेवाले में कोई फर्क है भी तो वह धार्मिकों के पक्ष मे नहीं है। इस वक्त की तरह उस समय भी खुलेआम अपनी धार्मिकता का एलान करनेवाले ज्यादातर उन्ही आदमियों मे मिलते थे जो दुर्बुद्धि और बेरहम होते थे, पर जो अपने को बहुत ज्यादा वकत देते थे। योग्यता, सच्चाई, विश्वसनीयता, शीलस्वभाव और सदाचरण वग़ैरा गुण अक्सर नास्तिकों मे ही पाये जाते थे।

स्कूलों मे धर्म-पुस्तकें पढाई जाती हैं और वहाँ से विद्यार्थियों को गिर्जे मे भी भेजा जाता है, सरकारी अफसरों तक को 'कम्यूनियन' (प्रभु ईसा के स्मरणार्थ भोज जिसमे ध्यान मे उनके साथ सम्पर्क स्थापित किया जाता है) प्राप्त करने का सर्टिफ़िकेट या प्रमाणपत्र पेश करना पडता है। पर हमारी तरह का कोई आदमी, जिसने अपनी तालीम खत्म कर दी है और सरकारी नौकरी मे नहीं है, आज भी १०–२० साल बिना इसकी एक बार भी याद किये बिता दे सकता है कि वह ईसाइयो के बीच रह रहा है और खुद कट्टर वा शुद्ध ईसाई मत का सदस्य समझा जाता है। उस ज़माने मे तो यह बात और सरल थी।

इस तरह पहले भी यह बात होती थी और अब भी है कि जो धार्मिक सिद्धान्त लोगों की देखादेखी या सुनासुनी मान लिये गये है और बाहरी दबाव की वजह से बने हुए हैं वे ज़िन्दगी के ज्ञान और अनुभव के प्रभाव से (जिसका धार्मिक मत से विरोध है) बिखरने और गलने लगते हैं और मजा यह है कि आदमी इसी कल्पना मे पडा हुआ ज़िन्दगी के दिन बिता देता है कि बचपन मे उसे जो धार्मिक सिद्धान्त बताये गये थे वे ज्यो-के-त्यों बने हुए हैं, जबकि उनका नाम-निशान भी बाकी नहीं होता।

'क' नाम के एक होशियार और सच्चे आदमी ने एक बार मुझे अपनी कहानी सुनायी थी कि कैसे वह नास्तिक बन गया। जब वह २६ साल का

था, तब की बात है। एक बार वह शिकार खेलने गया। रात के वक्त एक जगह पड़ाव डाला गया। बचपन से चली आई आदत की वजह से उसने शाम के वक्त झुककर प्रार्थना शुरू कर दी। इस शिकार में उसका बड़ा भाई भी साथ था। वह घास पर लेटा हुआ अपने छोटे भाई के इस काम को देख रहा था। जब 'क' प्रार्थना ख़त्म कर चुका और रात के लिए सोने की तैयारी करने लगा तब उसके बड़े भाई ने कहा—'अच्छा! तुम अभी तक यह सब करते जाते हो?'

उन्होंने एक-दूसरे से और कुछ नहीं कहा। लेकिन उस दिन से 'क' ने प्रार्थना करना या गिर्जे मे जाना छोड़ दिया और जब उसने अपनी कहानी सुनायी तब उसे प्रार्थना छोड़े, उपासना किये या गिर्जे मे गये तीस साल गुज़र चुके थे। यह सब उसने इसलिए नहीं छोड़ा कि वह अपने भाई के विश्वासों या विचारो को समझ कर उन्हे अपना चुका था या खुद अपनी आत्मा मे कुछ फैसला कर चुका था। यह सब नही। उसने इन्हे सिर्फ इसलिए छोड़ा कि उसके भाई के कहे हुए शब्द ने उस दीवार को धक्का देने वाली उँगली का काम किया जो खुद अपने बोझ से गिरने को हो रही हो। भाई के शब्द ने सिर्फ इतनी-सी बात जाहिर कर दी कि जहाँ 'क' समझता था कि अभी धर्मनिष्ठा कायम है तहाँ बहुत दिनों पहले सफ़ाया हो चुका था, बस्ती वीरान हो चुकी थी। इसलिए प्रार्थना के वक्त कुछ शब्दों का दोहराना, क्रास के चिन्ह बनाना या आराधना के लिए घुटने मोड़ कर बैठना, मतलब उसके जितने धार्मिक कृत्य थे सब अज्ञानपूर्ण कार्य थे। जब उसे उनकी निरर्थकता का अनुभव हुआ तब वह उन्हे कैसे जारी रख सकता था?

यही बात ज्यादातर आदमियों के साथ होती रही है और होती है। मै उन लोगो की बात कह रहा हूँ जिन्होंने हमारे दर्जे या सतह की तालीम पाई है और जो अपने तई ईमानदार हैं, मै उन लोगो की बात नहीं कह रहा हूँ जो दुनियावी इरादो और आकाक्षाओं को पूरा करने के लिए धर्माचरण को साधन बनाते हैं। (ऐसे आदमी सबसे बड़े, बुनियादी, नास्तिक है,

क्योंकि अगर उनके लिए धर्मनिष्ठा दुनियाबी मकसदों को हासिल करने का उपाय है तो फिर वह धर्मनिष्ठा ही नहीं है)। हमारी तरह की तालीम पाये हुए ये लोग ऐसी स्थिति में हैं कि ज्ञान और जीवन के प्रकाश ने एक बनावटी इमारत को गलाकर बहा दिया है और उन्होंने या तो इस बात को देख लिया है और उस जगह को साफ कर दिया है या फिर अभी तक इधर उनका ध्यान ही नहीं गया है।

दूसरों की तरह मेरी भी गति हुई, बचपन से सिखाया हुआ धर्म-विचार मेरे पास से भी लुप्त हो गया। लेकिन फ़र्क इतना-सा जरूर रहा कि १५ साल की उम्र से मैंने दार्शनिक ग्रन्थों को पढ़ना शुरू कर दिया जिससे धर्म-मत का यह त्याग छोटी उम्र में ही चेतनापूर्वक किये काम-सा हो गया। १६ सोलह साल का होते ही मैंने प्रार्थना कहनी या करनी बन्द कर दी, मेरा चर्च (गिर्जा = ईसाईधर्ममन्दिर) जाना छूट गया और उपवास का भी अन्त हो गया और यह सब मैंने अपने ही संकल्प से किया। जो कुछ मुझे बचपन में सिखाया गया था उसमें मेरा विश्वास नहीं था, लेकिन कोई-न-कोई चीज ऐसी जरूर थी जिसमें मैं विश्वास करता था। वह कौन-सी चीज है जिसमें मेरा विश्वास था, यह उस वक्त मैं नहीं बता सकता था। मैं किसी ईश्वर में विश्वास करता था या यों कह सकते है कि ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार नहीं करता था, पर उस वक्त यह बताना मेरे लिए नामुमकिन था कि वह ईश्वर किस तरह का है। मैं ईसा और उनकी शिक्षाओं को भी अस्वीकार नहीं करता था, लेकिन उनकी शिक्षाएँ क्या हैं, यह मैं नहीं कह सकता था।

जब मैं उस ज़माने की तरफ़ नज़र दौड़ाता हूँ तो अब मुझे साफ़-साफ दिखाई पड़ता है कि मेरी निष्ठा, मेरी एकमात्र वास्तविक निष्ठा, वह निष्ठा जो पाशविक प्रेरणाओं के अलावा मेरे जीवन को गति देती थी, मेरा यह विश्वास था कि मुझे अपने को पूर्ण बनाना चाहिए। लेकिन इस पूर्णता के मानी क्या है या उसका प्रयोजन क्या है, इसे मैं नहीं बता सकता था। मैंने मानसिक दृष्टि से अपने को पूर्ण बनाने की कोशिश की —मैंने हरएक

ऐसी चीज़ का अध्ययन किया, जिसका अध्ययन कर सकता था और जिसे ज़िन्दगी मेरे रास्ते पर डाल देती थी। मैंने अपनी संकल्प-शक्ति को पूर्ण करने की कोशिश की, मैंने ऐसे नियम बनाये जिनका पालन करने की मै कोशिश करता था, मैंने शारीरिक दृष्टि से भी अपने को पूर्ण किया—हर तरह की कसरतों से अपनी ताकत बढाने और शरीर मे फुर्ती लाने की कोशिश की और सुख-साधनों के सब तरह के त्याग के ज़रिए अपनी सहन-शक्ति और धीरज को बढाने का यत्न किया। मै इन सब को पूर्णता की खोज या अनुसरण समझता था। निश्चय ही इन सब की शुरुआत नैतिक पूर्णता से हुई, पर जल्द ही उसका स्थान सब तरह की सामान्य परिपूर्णता ने ले लिया यानी मेरे अन्दर यह ख़्वाहिश पैदा हुई कि मैं न सिर्फ अपनी और ईश्वर की निगाह मे, बल्कि दूसरे लोगो की निगाह मे भी अच्छा बनूँ। और बहुत जल्द यह कोशिश फिर दूसरों से ज्यादा ताकतवर बनने की इच्छा मे बदल गयी और मन मे यह बात पैदा हुई कि मै दूसरों से ज्यादा मशहूर, ज्यादा महत्त्वपूर्ण या वकत वाला और ज्यादा मालदार बनूँ।

: २ :

किसी दिन मैं अपनी जवानी के दस सालों के जीवन की करुणाजनक और शिक्षाप्रद कहानी बयान करूँगा। मेरा खयाल है कि और भी बहुतेरे आदमियों को ऐसा ही अनुभव हुआ होगा। अपनी सम्पूर्ण आत्मा से मैं अच्छा बनना चाहता था, लेकिन जब मैंने अच्छा बनने की कोशिश शुरू की तो मैं जवान था, तीखे स्वभाव का या वासनाओं से भरा था और अकेला था— बिल्कुल अकेला। जब-जब मैंने नैतिक रूप से भला बनने की अपनी सच्ची ख़्वाहिश जाहिर की, तब-तब हर बार मेरा उपहास किया गया और दिल्लगी उड़ाई गई, लेकिन ज्योंही मैं तुच्छ वासनाओं के आगे सिर झुका देता था, मेरी तारीफ की जाती और मुझे बढ़ावा दिया जाता था।

आकांक्षा, शक्ति का प्रेम, लोभ, कामुकता वा लम्पटता, घमण्ड, गुस्सा और प्रतिहिंसा सब की इज़्ज़त की जाती थी।

इन वासनाओं के आगे सिर झुकाकर मैं बड़े-बूढ़ों, सिनरसीदा लोगों की तरह हो गया और मैंने महसूस किया कि वे मेरी ताईद करते हैं। मेरी काकी, जिनके साथ मैं रहता था, खुद बहुत ही शुद्ध और ऊँचे चरित्र की थीं, लेकिन वह भी मुझसे सदा कहा करती थीं कि उनको किसी बात की इतनी इच्छा नहीं है जितनी इस बात की कि मेरी किसी व्याहता औरत से साँठ-गाँठ लग जाय। 'Rien ne forme un jeune homme, comme une liaison avec une femme il faut' (कोई चीज़ जवान आदमी को बनाने में उतना काम नहीं करती जितनी अच्छी जाति या पैदाइश की एक औरत से उसकी घनिष्ठता करती है।) मेरे लिए दूसरा सुख वह यह चाहती थीं कि मैं एडीकांग (किसी सेनापति या प्रतिष्ठित पदाधिकारी का

शरीर-रक्षक), और मुमकिन हो तो सम्राट् का एडीकाग, बनूं। पर सबसे बडा सुख तो उन्हे इस बात से होगा कि मै किसी बड़ी मालदार लड़की से शादी करूँ ताकि मेरे पास गुलामो की ज्यादा-से-ज्यादा तादाद हो।

बिना त्रास, घृणा और हृदय-वेदना के मै उन सालों का ख़याल नही कर सकता। मैने लड़ाई मे आदमियों को कत्ल किया, और मैने लोगों को मारने के लिए उनको द्वन्द्वयुद्ध मे ललकारा, मैने जुआ खेला और उसमे हारा, मैंने किसानो से बेगार ली और उन्हे सजाएँ दीं, बुरे आचरण किये और लोगों को धोका दिया। झूठ बोलना, लोगों को लूटना, हर तरह का व्यभिचार, मद्यपता, हिंसा, खून— मतलब कोई ऐसा जुर्म नही था जिसे मैने न किया हो, और मज़ा यह कि इन बातो के लिए लोगो ने मेरे आचरण की तारीफ़ की और मेरे ज़माने के आदमियो ने मुझे और लोगों के मुकाबिले मे सदाचारी व्यक्ति समझा और समझते है।

दस सालों तक मेरी जिन्दगी की यह सूरत थी।

इस ज़माने मे मैने लोभ और गरूर के कारण लिखना शुरू किया। मैने अपनी रचनाओं मे वही किया जो मै अपनी ज़िन्दगी में करता था। नामवरी और दौलत हासिल करने के लिए मै लिखता था और इसके लिए अच्छाई को छिपाना और बुराई का प्रदर्शन करना ज़रूरी था। मैने यही किया। न जाने कितनी बार अपनी रचनाओं मे उदासीनता और कभी-कभी उपहास के जामे मे मैने भलाई की तरफ़ जानेवाली अपनी उन प्रेरणाओं को छिपाने और दबाने की कोशिश की जिनकी वजह से मेरी ज़िन्दगी की सार्थकता थी। मै इसमें कामयाब हुआ और इसके लिए मेरी तारीफ़ की गई।

छब्बीस साल की उम्र मे, लड़ाई के बाद, मै पीटर्सबर्ग लौटा और लेखकों से मिला। उन्होंने मुझे अपनाया, स्वागत किया और मेरी चापलूसी की। और इसके पहले कि मै अपने इर्द-गिर्द नज़र डालता, मैने उन लेखकों के समूह के जीवन-सम्बन्धी विचारो को ग्रहण कर लिया था, जिनके बीच मे आया था। इन विचारो ने मेरे भला बनने की सारी पूर्व प्रेरणाओ का पूरी तरह लोप कर दिया। इन ख़यालों ने ऐसी विचार-प्रणाली मुहय्या कर

दी कि जिससे मेरी ज़िन्दगी की लम्पटता और विषयासक्ति सही साबित हो गई।

मेरे इन साथी लेखकों के जीवन-सम्बन्धी विचार ये थे : 'सामान्य जीवन विकसित होता ही जाता है और इस विकास में हम विचार-प्रधान आदमी ख़ास हिस्सा लेते हैं, फिर विचार-प्रधान आदमियों में भी हमारा—कलाकारों और कवियों का—सबसे ज्यादा प्रभाव होता है। हमारा धन्धा मनुष्य-जाति को शिक्षा देना है।' और कहीं यह सीधासादा सवाल किसी के दिल में न उठ खड़ा हो कि मैं जानता क्या हूँ और शिक्षा किस बात की दे सकता हूँ, इसके लिए इस सिद्धान्त या विचार-प्रणाली में यह कहा जाता था कि इसका जानना ज़रूरी नहीं है और कलाकार और कवि अचेतावस्था (बिना अपने काम का भान रक्खे हुए) में ही शिक्षा देते हैं। मैं एक काबिल-तारीफ़ कलाकार और कवि समझा गया, इसलिए मेरे लिए इस उसूल को मान लेना स्वाभाविक हो गया। मैं, कलाकार और कवि, ने लिखा और शिक्षा दी, खुद न जानते हुए कि मैं क्या लिख रहा हूँ और क्या सीख दे रहा हूँ। और इसके लिए मुझे धन मिलता रहा, मुझे अच्छा लजीज़ खाना, निवास, औरत और समाज सब कुछ मिला, और फिर मेरा यश भी फैला जिससे यह दिखता था कि जो कुछ मैं सिखा रहा हूँ वह बहुत अच्छी चीज है।

कविता के प्रयोजन और जीवन के विकास में इस तरह का विश्वास (अकीदा) एक मज़हब था और मैं उसका एक पुरोहित। इसका पुरोहित वा पुजारी होना बड़ा मजेदार और फ़ायदेमन्द था। मैं बहुत दिनों तक इस मजहब को, उसके औचित्य में किसी तरह का सन्देह किये बिना मानता रहा। लेकिन इस ज़िन्दगी के दूसरे और खास तौर पर तीसरे साल में मैं इस मज़हब की निर्भ्रान्तता पर शुबहा करने लगा और मैंने उसकी जाँच करनी भी शुरू कर दी। इस शुबहे की पहली वजह यह थी कि मैंने देखा कि इस मज़हब के सब पुजारी या पुरोहित भी आपस में एक राय नहीं रखते। कुछ कहते थे : 'हम सबसे अच्छे और सबसे उपयोगी शिक्षक हैं;

हम वही सिखाते हैं जिसकी ज़रूरत है। पर दूसरे ग़लत बातें सिखाते हैं।' दूसरे कहते : 'नहीं, असली शिक्षक हम हैं, तुम ग़लत बातें सिखाते हो।' और वे एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते, गाली-गलौज करते और धोका दिया करते थे। हम मे से बहुतेरे ऐसे भी थे जिनको इसकी परवा न थी कि कौन सही है और कौन ग़लत; वे सिर्फ़ हमारी इन कार्रवाइयों के ज़रिए अपना मतलब पूरा करने पर तुले हुए थे। इन सब बातों की वजह से मै अपने मज़हब की सच्चाई पर शुबहा करने को मजबूर हो गया।

ख़ुद लेखकों के धर्म-मत या लक्ष्य में इस तरह शुबहा करना शुरू करने के बाद मै पुरोहितो पर भी ज्यादा बारीकी की नज़र डालने लगा और मुझे पक्का यकीन हो गया कि इस मज़हब के करीब-करीब सब पुजारी यानी लेखक असदाचारी, और ज्यादातर दुराचारी एवं अयोग्य हैं तथा उनसे कहीं नीचे हैं जिनसे मै अपने पहले के भ्रष्ट और सैनिक जीवन में मिला था। वे आत्म-विश्वासी एवं आत्म-सन्तुष्ट थे और ऐसा वे ही आदमी हो सकते हैं जो बिल्कुल पवित्र हो या फिर जो जानते भी न हों कि पवित्रता किस चिड़िया का नाम है। इन आदमियो से मुझे नफ़रत होने लगी; मुझे ख़ुद अपने तईं नफ़रत हो गयी और मैने महसूस किया कि यह मत सिर्फ़ धोखा-धड़ी के सिवा कुछ नहीं है।

लेकिन ताज्जुब है कि गो मै इस धोखेबाज़ी को समझ और छोड़ चुका था, पर मैने उस पदमर्यादा का त्याग नहीं किया जो इन आदमियों ने मुझे दे रक्खी थी—यानी कलाकार, कवि और शिक्षक की मर्यादा। मैने बड़े भोलेपन के साथ यह ख़याल बना लिया कि मै कवि और कलाकार हूँ और बग़ैर जाने हुए कि मैं क्या सिखा रहा हूँ, मैं हर एक को शिक्षा दे सकता हूँ। मै इसी कल्पना के मुताबिक काम भी करता रहा।

इन आदमियो के संसर्ग से मैने एक नई बुराई सीखी ' मेरे अन्दर ग़ैरमामूली तौर पर बढा हुआ यह ग़रूर और मूर्खतापूर्ण विश्वास पैदा हुआ कि आदमियो को शिक्षा देना ही मेरा धन्धा या पेशा है— फिर चाहे मुझे ख़ुद मालूम न हो कि मै क्या सिखा रहा हूँ।

उस ज़माने की और अपनी तथा उन आदमियों (जिनके समान आज भी हजारों हैं) की मनोदशा की याद करना बड़ा दुःखदाई, खौफ़नाक और भद्दा है और इससे ठीक वही भावना पैदा होती है जो आदमी पागलखाने में महसूस करता है।

हाँ, तो उस वक्त हम सब का यकीन था कि हमें जितनी तेज़ी के साथ और जितना ज्यादा मुमकिन हो बोलना, लिखना और छपाना चाहिए और यह सब मनुष्य के हित के लिए ज़रूरी है। हममें से हजारों ने एक-दूसरे का खण्डन और परस्पर निन्दा करते हुए, दूसरों को शिक्षा देने के लिए लिखा और छपवाया—बगैर बताये हुए कि हम कुछ नहीं जानते या जिन्दगी के इस बिल्कुल सीधे सवाल का जवाब दिये बगैर कि आखिर अच्छाई क्या है और बुराई क्या है, हम जवाब देना भी नहीं जानते थे, एक-दूसरे की सुनते न थे और सब एक ही वक्त बोलते थे, कभी इस खयाल से दूसरे का समर्थन और प्रशंसा करते थे कि वह भी मेरा समर्थन और प्रशंसा करेगा। और कभी एक दूसरे से नाराज हो उठते थे, जैसा कि पागलखाने में हुआ करता है।

हजारों मजदूर दिन-रात अपनी पूरी ताकत से कम्पोज करते और उन लाखों शब्दों को छापने की मेहनत करते थे, जिन्हें डाकखाना सारे रूस में फैला देता था, और हम सब शिक्षा देते ही जाते थे, जैसे हम को शिक्षा देने का काफ़ी वक्त ही न मिलता हो। हमें सदा इस बात पर खीझ भी होती थी कि हमारी तरफ़ काफ़ी तवज्जह नहीं दी जा रही है।

यह बड़े ही ताज्जुब की बात थी, पर इसका समझना मुश्किल न था। हमारी असली और दिली मंशा तो यह थी कि ज्यादा-से-ज्यादा दौलत और नामवरी हासिल हो। इस मतलब को हल करने के लिए हम किताबें लिखने और अख़बार निकालने के अलावा और कुछ कर नहीं सकते थे, इसलिए हम यही करते थे। पर यह फिजूल का काम करने और इसका इत्मीनान रखने के लिए कि हम बड़े महत्वपूर्ण लोग हैं, हमें अपने कामों को उचित ठहरानेवाले एक मत—'थियरी'—की जरूरत थी। इसलिए हम लोगों के

बीच यह मत चल पड़ा : 'जितनी बातों का अस्तित्व है वे सब ठीक हैं। जो कुछ है उस सबका विकास होता है। यह सब विकास संस्कृति के जरिये होता है। और संस्कृति की माप किताबों और अखबारों के प्रचार से की जाती है। और चूँकि हम किताबें और अखबार लिखते है, इसलिए हमें धन और इज्जत मिलती है और इसीलिए हम सब आदमियों से अच्छे और उपयोगी हैं।' अगर सब लोग एक राय के होते तो यह मत या सिद्धान्त, हमारे लिए ठीक बना रहता, पर चूँकि हममें से हर एक आदमी जो ख़याल जाहिर करता, दूसरा सदा उसके बिल्कुल विरोधी विचार प्रकट करता, हमारे मन में विचारशीलता और चिन्ता का भाव पैदा होना स्वाभाविक था। पर हमने उसकी उपेक्षा की। लोग हमको धन देते थे और हमारी तरफ़ के लोग हमारी तारीफ़ करते थे, इसलिए हम में से हर एक अपने को ठीक समझता था।

आज मुझे साफ-साफ मालूम पड़ता है कि यह सब पागलखाने-जैसी बातें थीं; पर उस वक्त मुझे सिर्फ इसका धुँधला आभास था और जैसा कि सभी पागलों का कायदा है, मैं अपने सिवा और सब को पागल कहता था।

: ३ :

अपने को इस पागलपन में डाले हुए मैंने छः साल और बिताये—यानी तबतक जबतक कि मेरी शादी नहीं हो गई। इस अवधि में मैं विदेश गया। वहाँ, यूरोप में, मेरा जैसा जीवन रहा उससे और प्रधान-प्रधान विद्वान् यूरोपियनों के साथ परिचय में आने पर मेरा यह मत कि पूर्णता के लिए कोशिश करनी चाहिए, और दृढ हो गया; क्योंकि मैंने देखा कि वे भी ऐसा ही मानते हैं। इस निष्ठा ने मेरे अन्दर भी वही सूरत पकड़ी जो हमारे ज़माने के ज्यादातर तालीमयाफ्ता लोगों के साथ होती है। यह 'प्रगति' के नाम से ज़ाहिर की जाती थी। तभी मुझे ख़याल आया कि इस शब्द के भी कुछ मानी हैं। दूसरे जिन्दा आदमियों की तरह मुझे यह सवाल परेशान किए हुए था कि मेरे लिए किस तरह ज़िन्दगी बसर करना सबसे अच्छा होगा और तब भी मैं ठीक-ठीक नहीं समझता था कि इस सवाल का मेरा जवाब—'प्रगति के अनुकूल जीवन बिताओ'—नाव पर सवार उस आदमी के जवाब की तरह है जो तूफ़ान के बीच पड़ा हुआ है और 'किधर नाव खेना है' का जवाब यह कहकर देता है कि 'हम कहीं बहे जा रहे हैं।'

उस वक्त यह बात मेरे ध्यान मे नहीं आई थी। कभी-कभी, बुद्धि से समझकर नहीं, बल्कि प्रेरणा के कारण, मैं इस मिथ्या-विश्वास के प्रति विद्रोह करता था, जो हमारे ज़माने मे एक आम बात थी और जिसके ज़रिये आदमी ज़िन्दगी के मानी समझने में अपने अज्ञान को खुद अपने से ही छिपाते हैं। ...जब मैं पेरिस में ठहरा हुआ था तब एक आदमी को फाँसी दी जाती देख कर मुझे प्रगति मे अपने मिथ्या विश्वास की अस्थिरता का पता चला। जब मैंने सिर को धड़ से जुदा होते देखा और उनको अलग-अलग होकर तख्ते पर गिरते देखा तब मैंने न सिर्फ़ अपने मन या

दिमाग़ से वल्कि सारी हस्ती के साथ महसूस किया कि हमारी मौजूदा तरक्की—प्रगति—के औचित्य की कोई दलील इस करतूत को मौजूँ या उचित नहीं बना सकती और गोकि दुनिया की शुरुआत से हर एक आदमी ने इसे ज़रूरी, चाहे किसी उसूल पर, बताया है, मैंने समझ लिया कि यह ग़ैरज़रूरी और बुरी है; इसलिए बुरा क्या है, भला क्या है, इसका फ़ैसला यह देखकर नहीं किया जा सकता कि लोग क्या कहते और करते हैं, प्रगति भी इसका निर्णय नहीं कर सकती—इसका फ़ैसला तो मेरा हृदय और 'मैं' ही कर सकता हूँ। प्रगति में मूढ़ विश्वास ज़िन्दगी की रहनुमाई करने के लिए नाकाफ़ी है, इसे दूसरी वार मैंने अपने भाई की मौत को देखकर महसूस किया। वह बुद्धिमान थे, भले थे और गंभीर स्वभाव के थे। फिर भी जवानी में ही बीमार पड़े, एक साल से ज्यादा वक्त तक कष्ट भोगते रहे और वग़ैर इसे समझे हुए कि वह किसलिए जिये और इससे भी कम यह कि उनको किसलिए मरना पड़ रहा है, बड़ी वेदना के साथ उनकी मौत हुई। जब वह आहिस्ता-आहिस्ता और कष्टपूर्वक यों मर रहे थे उस वक्त पैदा होने वाले इन सवालों का जवाब उनको या मुझको, किसी उसूल या मत से नहीं हासिल हो सका। पर इस तरह के सन्देह तो मेरे मनमें कभी-कभी ही उठते थे, दरअसल तो मैं प्रगति का हामी और भक्त बनकर ही ज़िन्दगी गुज़ारता रहा। 'सब का विकास होता है और उसके साथ मेरा भी विकास होता है; सब के साथ मेरा विकास क्यों होता है, इसका पता भी कभी लग जायगा।' उस वक्त इस तरह का विश्वास मैंने बना रक्खा था।

विदेश से लौटने पर मैं देहात में बस गया। यहाँ मुझे किसानों के स्कूलों में काम करने का मौका मिला। यह काम ख़ास तौर पर मेरी तबीयत के लिए मौज़ूँ था; क्योंकि इसमें मुझे उस झूठ का सामना नहीं करना पड़ता था जो मेरे सामने साहित्यिक साधनों (अदबी ज़रियों) से लोगों को शिक्षा देते वक्त होता था और मुझे घूरता था। यह ठीक है कि यहाँ भी मैंने 'प्रगति' के नाम पर काम किया, पर मैं अब खुद 'प्रगति' को शुबहे की नज़र से देखता था। मैंने अपने तईं कहा—'अपनी कुछ प्रवृत्तियों

मे 'प्रगति' की चाल गलत रही है : शुरू के जमाने के तौर-तरीके वाले इन सीधे-सादे किसानो के बच्चो के साथ तो पूरी आजादी की वृत्ति से ही वर्ताव किया जा सकता है—उनको खुद चुनने देना चाहिए कि वे प्रगति के किस रास्ते को पसन्द करते हैं।' दरअसल तो मै एक ही असाध्य मसले के चारो तरफ़ लगातार चक्कर काट रहा था; वह मसला यह कि 'बगैर जाने कि क्या सिखाया वा पढाया जाय, किस तरह सिखाया जा सकता है।' साहित्यिक कामो के ज्यादा ऊँचे क्षेत्र मे मैंने यह महसूस कर लिया था कि कोई तब-तक शिक्षा नहीं दे सकता जबतक यह जान न ले कि क्या शिक्षा देनी है। वहाँ मैंने देखा कि सब लोग जुदा-जुदा ढंग से बताते या सिखाते है और आपस मे लड़ने की वजह से सिर्फ एक-दूसरे से अपने अज्ञान को छिपाने मे कामयाब होते है। लेकिन यहाँ किसानो के बच्चो के बीच काम करते वक्त मैंने इस मुश्किल को दूर करने के लिए उन्हे पूरी आजादी दे दी कि वे जो चाहें उसे ही सीखे। मुझे याद आ रहा है कि मै अपनी सिखाने की इच्छा को तृप्त करने के प्रयत्न मे किस तरह की हरकतें करता था। अपनी अन्तरात्मा मे तो मैं अच्छी तरह जानता था कि मै कोई उपयोगी या कारआमद चीज सिखा नहीं सकता, क्योंकि मैं जानता ही नहीं कि क्या उपयोगी या जरूरी है। साल भर तक स्कूल का काम करने के बाद मैं दूसरी वार इस बात का पता लगाने के लिए विदेश गया कि खुद कुछ न जानते हुए भी मै दूसरो को कैसे शिक्षा दे सकता हूँ।

और मुझे ऐसा मालूम पडा कि मैंने विदेश जाकर इसे सीख लिया और किसानों की मुक्ति के साल (१८६१) में मै इस ज्ञान के साथ रूस लौटा। लौटते ही मैं पच (किसानों और जमींदारों के बीच शान्ति बनाये रखने वाला) बना दिया गया। स्कूल में मैंने अशिक्षित किसानों को सिखाना-पढाना शुरू किया और शिक्षित वर्गों को एक पत्रिका निकालकर उनके ज़रिये शिक्षा देने लगा। दिन अच्छी तरह बीतते हुए मालूम पड़ते थे, पर मैं महसूस कर रहा था कि मानसिक दृष्टि से मेरी दशा अच्छी नहीं है और इस तरह से ज्यादा दिन तक चल नहीं सकता। उस वक्त शायद

मेरी ज़बर्दस्त निराशा की वही हालत होती जो पन्द्रह साल बाद हुई। पर चूँकि जिन्दगी का एक पहलू ऐसा था जिसका तजुरबा अभी मैं न कर पाया था, इसलिए उधर से सुखी होने की उम्मीद बनी रही। मेरा मतलब विवाह से है।

एक साल तक तो मैंने अपने को पंचायत, स्कूल और पत्रिका के काम में खूब व्यस्त रक्खा और मैं ख़ास तौर पर अपने मानसिक या दिमाग़ी व्यग्रता के कारण बिल्कुल पस्त हो गया। पंच की हैसियत से मुझे इतनी ज़बर्दस्त कशमकश करनी पड़ती थी, स्कूलों में मेरे काम का कुछ ऐसा अस्पष्ट परिणाम निकल रहा था और पत्रिका में मेरी जोड़-तोड़ इतनी घृणा-जनक थी (क्योंकि उसमें सिर्फ़ एक ही बात होती थी—हरएक को सिखाने की इच्छा और यह छिपाने की कोशिश कि क्या सिखाना चाहिए इसका मुझे ज्ञान नहीं) कि मैं बीमार पड़ गया। यह बीमारी शारीरिक की बनिस्बत मानसिक ही ज्यादा थी। मैंने सब काम छोड़ दिये और साफ़-ताज़ी हवा मे सांस लेने, कूमीज़[1] पीने और सिर्फ़ जानवरों जैसी ज़िन्दगी बिताने के ख़याल से बशकीर के मैदानों में चला गया।

वहाँ से लौटने के बाद मैंने शादी कर ली। सुखी कौटुम्बिक जीवन की नई हालतों ने जीवन के सामान्य अर्थ-सम्बन्धी सब खोजों की तरफ़ से मुझे विमुख कर दिया। उस वक्त मेरी सारी ज़िन्दगी अपने कुटुम्ब, स्त्री और बच्चो में केन्द्रित थी, इसलिए मुझे अपनी जीविका के साधनों को बढ़ाने की भी फिक्र लग गयी। अपने को पूर्ण बनाने की कोशिश, जिसकी जगह मैं सामान्य पूर्णता यानी प्रगति के उसूल को अपना ही चुका था, फिर जाती रही और उसकी जगह मैं अपने और अपने कुटुम्ब के लिए, जहाँ तक मुमकिन हो, अच्छी-से-अच्छी सुविधायें जुटाने की कोशिश में लग गया।

इस तरह पन्द्रह साल और बीते।

यद्यपि अब मैं लेखन-कार्य को कोई महत्व नहीं देता था फिर भी मैं

---

१. घोड़ी के दूध से बनाया हुआ एक तरह का हल्का नशा पैदा करनेवाला पेय।

उन पन्द्रह सालों में लिखता ही रहा। मैं पुस्तक लेखक होने—खूब आर्थिक पुरस्कार पाने और अपनी निकम्मी रचनाओं के लिए यश प्राप्त करने—के प्रलोभन का स्वाद पा चुका था। इसलिए अपनी दुनियावी या माली हालत अच्छी करने और खुद अपनी या सामान्य ज़िन्दगी के अर्थ के बारे में अन्तरात्मा के अन्दर उठने वाले सवालों को दबा देने के लिए मैंने लिखना जारी रक्खा।

मेरे लिए जो एकमात्र सचाई रह गई थी, वही मैं दूसरों को अपनी रचनाओं के ज़रिये सिखाने लगा—यानी आदमी को इस तरह रहना चाहिए कि वह अपने और अपने कुटुम्ब के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा सुख-सहूलियत का सामान मुहय्या कर सके।

इस तरह जिन्दगी की गाडी चलती रही; लेकिन पाँच साल पहले मुझे एक अजीब अनुभव होने लगा। शुरू में एक परेशानी और उलझन का अनुभव होता था; कुछ ऐसा महसूस होता था जैसे जिन्दगी की रफ़्तार बन्द हो गई है, उसमें कोई रुकावट पैदा हो गई है और मैं नहीं जानता कि किस तरह जीना चाहिए और क्या करना चाहिए। मैं अपने को खोया हुआ और मायूस अनुभव करने लगा। लेकिन धीरे-धीरे यह अवस्था बीत गई और मैं पहले-जैसी जिन्दगी बिताने लगा। कुछ दिनों बाद इस तरह की उलझन बार-बार होने लगी और उसकी सूरत भी एक ही होती थी। यह उलझन कुछ इस सवाल की सूरत में सामने आती थी 'यह किसलिए है? यह कहाँ ले जाती है?'

शुरू-शुरू मे तो मुझे ऐसा लगता था कि ये बेमानी और बेसिर-पैर के सवाल हैं। मैंने सोचा कि यह सब अच्छी तरह जाना हुआ है और अगर कभी मैं इसे हल करना चाहूँगा तो मुझे कुछ ज़्यादा मेहनत न करनी पड़ेगी, फिलहाल मेरे पास इसके लिए वक्त नही है, पर जब मैं चाहूँगा, इसका जवाब ढूँढ लूँगा। पर ये सवाल बार-बार दिमाग़ में उठने लगे और जवाब देने के लिए ज्यादा जोर देने लगे। एक ही जगह गिरती हुई स्याही की तरह उन्होंने एक बडा काला निशान बना दिया।

इसका नतीजा वही हुआ जो घातक अन्दरूनी बीमारी से पीड़ित हर एक आदमी का होता है। पहले तबीयत की गिरावट के हलके लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिसकी तरफ़ अस्वस्थ आदमी ध्यान नहीं देता, फिर ये अलामात या लक्षण जल्द-जल्द, बार-बार, दिखाई पड़ने लगते हैं और फिर लगातार पीड़ा की अवधि में तब्दील हो जाते हैं। तकलीफ़ बढ़ती जाती है और इसके पहले कि बीमार आदमी अपने इर्द-गिर्द नजर डाले, वह चीज़ जिसे उसने महज़ तबीयत का भारीपन समझ रक्खा था, दुनिया में उसके लिए सब चीज़ों से ज़्यादा महत्वपूर्ण हो चुकी रहती है!—यह मौत है!

मेरे साथ यही वाकआ हुआ। मैंने समझ लिया कि यह कोई आकस्मिक अस्वस्थता नहीं है, बल्कि कोई बड़ी महत्वपूर्ण बात है। और अगर ये सवाल इसी तरह बार-बार सामने आते रहे तो इनका जवाब देना ही पड़ेगा। मैंने उनका जवाब देने की कोशिश की। ये सवाल कितने मूर्खतापूर्ण, सीधे और बचपन से भरे हुए मालूम पड़ते थे, लेकिन ज्योंही मैंने उनको हाथ में लिया और हल करने की कोशिश की, त्योंही मुझे यकीन हो गया कि (१) वे बचपन से भरे हुए या मूर्खतापूर्ण सवाल नहीं हैं, बल्कि ज़िन्दगी के सवालों में सबसे महत्त्वपूर्ण और गम्भीर हैं और (२) मैं चाहे जितनी कोशिश करूँ उनको हल करने में असमर्थ हूँ। अपनी समारा नाम की जमींदारी सँभालने, अपने बेटे की तालीम का इंतजाम करने और किताब लिखने के पहले मेरे लिये यह जानना ज़रूरी हो गया कि मैं यह सब क्यों कर रहा हूँ। जबतक मैं जान न लेता कि क्यों, तबतक कोई काम नहीं कर पाता था, यहाँ तक कि ज़िन्दगी नामुमकिन मालूम पड़ती थी। उस वक्त मैं जमींदारी के इन्तज़ाम में ज़्यादा फँसा हुआ था, लेकिन उसकी झंझटों के बीच भी एकाएक यह सवाल मेरे दिमाग़ में पैदा हो जाता कि—'तुम्हारे पास समारा सरकार में ६००० 'देसियातिना' * ज़मीन है, ३०० घोड़े हैं पर इसके बाद?'.. मैं परेशान हो जाता और समझ में नहीं आता कि क्या सोचूँ? इसी तरह अपने बच्चों की तालीम की

* एक देसियातिना लगभग पौने-तीन एकड़ के बराबर होता है।

योजनाओं पर ग़ौर करते-करते मैं अपने तईं पूछने लगता—'किस लिए ?' जब इस बात पर विचार कर रहा होता कि किसानों को समृद्ध कैसे बनाया जा सकता है, मैं एकाएक अपने से सवाल कर बैठता—'बहुत अच्छा, तुम गोगल[१], पुश्किन[२], शेक्सपीयर[३] या मौलियर[४], बल्कि दुनिया के सब लेखकों से ज्यादा मशहूर होगे—पर इससे क्या ?' मुझे इसका कुछ भी जवाब नही सूझता था। उधर सवाल ठहरने को तैयार न थे, वे तुरन्त जवाब चाहते थे और अगर मैं उनका जवाब न देता तो मेरा जीना नामुमकिन था। पर क्या करता, कुछ जवाब ही न था।

मैंने महसूस किया कि जिस चीज़ पर मैं इतने दिनों से खड़ा था वह गिर गयी है और मेरे पाँव के नीचे कोई आधार नही है. जिस चीज के सहारे मैं इतने दिनो तक जी रहा था वह खत्म हो गयी है और ऐसी कोई चीज़ नही रह गयी है जिसको लेकर मैं जी सकूं।

१-२ प्रसिद्ध रुसी लेखक ३ प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार ४ मशहूर फरासीसी हास्य नाट्य लेखक।

: ४ :

मेरी ज़िन्दगी की हरकत बन्द हो गई। मै साँस लेता, खाता-पीता और सोता था, इन कामो को करने के लिए मै मजबूर था, लेकिन जीवन नही रह गया था, क्योंकि ऐसी ख्वाहिशें नही रह गई थीं जिनका पूरा करना मेरे लिए मुनासिब हो। अगर किसी चीज़ की ख्वाहिश होती तो भी मै पहले से ही समझ जाता था कि चाहे मैं उसे पूरा करूँ या न करूँ, इससे कुछ होने-जानेवाला नही है। इस वक्त अगर कोई परी या देवी मेरे पास आकर वरदान माँगने को कहती तो मुझे मालूम ही न पड़ता कि उससे क्या माँगना चाहिए। कभी-कभी नशे की घड़ियो मे मै कोई ऐसी चीज़ महसूस करता था जो इच्छा तो नही, हाँ, पहले की ख्वाहिशों की वजह से पडी आदत होती थी, लेकिन चित्त के शान्त और स्वस्थ होने पर मै समझ जाता था कि यह धोका है और दरअसल ख्वाहिश करने लायक कोई चीज नहीं है। मै सत्य को जानने की इच्छा भी नही कर पाता था, क्योंकि मै एक कल्पना कर चुका था कि वह किन बातों मे है। मैंने सत्य यह समझ लिया था कि ज़िन्दगी बेमानी है। मैंने तबतक ज़िन्दगी बसर की और बसर की, चलता गया और चलता गया जबतक खन्दक के पास नही पहुँच गया और साफ़-साफ़ यह देख नही लिया कि मेरे आगे विनाश के सिवा कुछ नही है। ठहरना या पीछे लौट जाना नामुमकिन था, पर अपनी आँखो को बन्द कर लेना या इस बात को न देखना भी नामुमकिन था कि कष्ट और मौत—पूर्ण विनाश के सिवा अब मेरे आगे कुछ नही है।

हालत यह हो गई थी कि मै एक तन्दुरुस्त और भाग्यवान आदमी महसूस करता था कि अब मै जी नही सकता; कोई अप्रतिहत शक्ति (न रोकी जा सकनेवाली ताकत) इधर या उधर ज़िन्दगी से छुटकारा पाने के

लिए मुझे धकेल रही है। मै यह तो नही कह सकता कि मै अपनी हत्या करना चाहता था। जो ताकत मुझे ज़िन्दगी से दूर धकेल रही थी, किसी ख्वाहिश या चाह से कहीं ज़्यादा बलवान, पूर्ण और विस्तृत थी। यह कुछ उस ताकत से मिलती-जुलती थी जो पहले मुझे एक अलग दिशा मे, जीने के लिए प्रेरित करती थी। मेरी सारी शक्ति मुझे ज़िन्दगी से दूर लिये जा रही थी। जैसे पहले अपनी ज़िन्दगी को सुधारने और विकसित करने के खयालात मेरे मन मे आते थे वैसे ही स्वभावत आत्म-विनाश का विचार भी मेरे मन मे पैदा हुआ। और यह खयाल कुछ ऐसा लुभावना था कि मुझे अपने साथ ज़बर्दस्ती करनी पड़ी, क्योंकि अन्देशा था कि कहीं मैं ज़्यादा जल्दबाज़ी में कुछ कर न बैठूँ। मैं जल्दबाज़ी नहीं करना चाहता था, क्योंकि मै इसके जाल से निकलने की पूरी कोशिश कर लेना चाहता था। 'अगर मै मामलों को सुलझा नही सकता तो भी इसके लिए सदा वक्त है।' तब भाग्य की अनुकूलता से, मैंने अपने पास से अपने कमरे के उस पार्टिशन (बॅटवारा) की रस्सी हटा दी जिसमे रोज रात को मैं अपने कपडे उतारता था क्योंकि मुझे डर पैदा हो गया कि कही मै इसके ज़रिये फॉसी न लगा लूॅ। मैंने बन्दूक लेकर बाहर शिकार के लिए जाना भी बन्द कर दिया कि कहीं ऐसी आसानी से मैं अपनी ज़िन्दगी का खात्मा न कर दूॅ। मैं खुद नहीं जानता था कि मैं चाहता क्या हूॅ, मै ज़िन्दगी से भय खाता था, उससे भागना चाहता था, फिर भी उसकी कुछ-न-कुछ उम्मीद मुझे लगी हुई थी।

और मेरी यह हालत उस वक्त हो रही थी जब मैं चारो तरफ वैभव से घिरा हुआ था। अभी मेरी उम्र ५० की भी न थी, मेरी पत्नी बड़ी नेक थी, वह मुझे प्यार करती थी और मै उसे प्यार करता था। मेरे बच्चे अच्छे थे, मेरे पास एक बडी ज़मींदारी थी जो मेरे कुछ ज्यादा मेहनत किये बगैर बढती जा रही थी। मेरे रिश्तेदार और परिचित लोग मेरी जितनी इज़्ज़त इस वक्त करते उतनी पहले कभी न करते थे। दूसरे लोग भी मेरी तारीफ़ करते थे और बगैर कुछ ज़्यादा आत्म-वंचना के मै समझ सकता था कि मेरा नाम मशहूर हो गया है। और पागल या मानसिक दृष्टि से

अस्वस्थ होना तो दूर रहा, इस वक्त मेरे शरीर और दिमाग़ मे इतनी ताकत थी जितनी मेरे दर्जे के आदमियो में शायद ही कभी पाई जाती है। शरीर की दृष्टि से देखें तो मै किसानो की बराबरी से कटाई का काम कर सकता था और मानसिक दृष्टि से मैं लगातार ८ से १० घण्टे तक, बिना थकावट या बुरेअसर के, काम मे लगा रह सकता था। ऐसी हालत मे भी मुझे यह महसूस होता था कि मैं जी नही सकूँगा और मौत से डर कर अपने साथ ही ऐसी चालबाज़ियाँ करता था कि कही मै खुद अपनी जान न ले बैठूँ।

मेरी मानसिक स्थिति मेरे सामने कुछ इस तरह आती थी : मेरी जिन्दगी एक मूर्खतापूर्ण और ईर्ष्या से भरी हुई दिल्लगी है जो किसी ने मेरे साथ की है। गो मैं अपने को पैदा करनेवाले इस 'किसी' को मानता न था फिर भी इस तरह का ख़याल स्वभावत मेरे मन में पैदा होता था कि किसी ने इस दुनिया में लाकर मेरे साथ बुरा और भद्दा मज़ाक किया है।

बग़ैर किसी तरह की कोशिश के मेरे अन्दर यह ख़्याल पैदा हुआ कि कही-न-कहीं कोई ऐसा ज़रूर है जो यह देखकर अपना मनोरंजन कर रहा है कि मैं तीस या चालीस सालों मे किस तरह रहता रहा हूँ, किस तरह इस ज़माने में शरीर और दिमाग़ से सीखता एवं विकसित और पुष्ट होता रहा हूँ—और पुष्ट मानसिक शक्तियो के साथ जीवन की उस चोटी पर पहुँचकर, जहाँ से यह सब चीजें मेरे सामने पडी दिखाई देती है, मै चोटी पर ही खडा हो गया हूँ—और महामूर्ख की तरह यह साफ़ देखता रहा हूँ कि ज़िन्दगी मे कुछ नही है, न कुछ रहा है और न कुछ होगा। और वह दिल बहला रहा है...

लेकिन मुझ पर हँसने वाला 'वह कोई' हो या न हो, मेरी हालत तो ख़राब ही थी। मै अपने किसी काम का, या सारी ज़िन्दगी का कोई उचित तात्पर्य ढूँढ नही पाता था। मुझे इस पर ताज्जुब हुआ कि मैंने शुरू से इस बात की जानकारी से अपने को महरूम रक्खा—दूसरों को तो यह बहुत दिनों से मालूम है। जिनको मै प्यार करता हूँ उन पर या मुझे आज या कल बीमारी और मौत आयेंगी (वे तो आ ही चुकी थी), बदबू और

कीड़ों के अलावा कुछ बाकी न रह जायगा। जल्द या कुछ देर से मेरी बातें लोग भूल जायेंगे और मेरा अस्तित्व न रह जायगा। तब कोशिश करने से क्या फ़ायदा ? आदमी इस बात को महसूस किये बिना कैसे रह सकता है ? कैसे वह ज़िन्दगी बसर करता जा सकता है ? यह अचंभे की बात है ! कोई तभी तक जी सकता है जबतक वह जीवन से मतवाला हो, ज्योंही वह शान्त और संयमी हुआ उसका यह न देखना नामुमकिन है कि यह सब सिर्फ़ धोखा और मूर्खतापूर्ण प्रवञ्चना है ! यही ठीक है, इसमें चालाकी की या मनोरंजन की कोई बात नहीं है, यह सिर्फ़ निर्दय और मूर्खतापूर्ण है।

पूरब की एक बड़ी पुरानी कहानी है। एक मुसाफ़िर रास्ते से कहीं जा रहा था। एक मैदान में उसकी किसी क्रुद्ध जंगली जानवर से भेंट हो गयी। वह मुसाफ़िर जानवर से भागकर पास के सूखे कुएँ में घुस गया। पर जब उसने नीचे नज़र डाली तो देखता क्या है कि एक अजगर उसे निगलने के लिए अपना मुँह खोले हुए है। अब वह अभागा आदमी न तो जानवर के डर से कुएँ से बाहर ही आने की हिम्मत करता है और न अजगर के डर से कुएँ के अन्दर ही कूदने का साहस करता है। बचने के लिए वह कुएँ की एक दरार में निकली हुई टहनी पकड़कर लटक जाता है। उसके हाथ शिथिल होते जा रहे हैं और वह महसूस करता है कि जल्द ही उसे अपने को ऊपर या नीचे मौत के हाथ में सौंपना पड़ेगा। फिर भी वह लटका ही रहता है। इतने में ही वह देखता क्या है कि एक सफ़ेद और एक काला—दो चूहे बार-बार उस टहनी की जड़ के इर्द-गिर्द घूमते हुए उसे काट रहे हैं। जल्द ही टहनी टूट जायगी और उसे अजगर के मुँह में समा जाना होगा। मुसाफिर यह सब देखता है और जान लेता है कि उसे लाज़मी तौर पर मरना ही है। तब वह लटके-ही-लटके अपने चारों तरफ निगाह डालता है। देखता क्या है कि टहनी की पत्तियों पर शहद की कुछ बूँदें पड़ी हुई हैं। वह झुककर ज़बान से उन्हें चाट लेता है। यही हालत मेरी है। मैं भी यह जानते हुए कि मौत का अज़दहा टुकड़े-टुकड़े

कर देने के लिए मेरी बाट जोह रहा है। मैं जीवन की टहनी को पकड़े हुए हूँ और यह समझने में असमर्थ हूँ कि क्यो मै ऐसी यातना के बीच गिर पड़ा हूँ। मैने शहद चाटने की कोशिश की जिससे पहले मुझे कुछ शान्ति मिली, पर शहद से मुझे सुख नही मिला और दिन और रात-रूपी सफ़ेद और काले चूहे ज़िन्दगी की उस टहनी को बराबर काट रहे हैं जिसे मै पकड़े हुए हूँ। मैंने साफ़-साफ़ अज़दहे को देख लिया है और अब शहद मीठा नही लगता। मै सिर्फ़ अज़दहे और चूहों को देख रहा हूँ और उनसे अपनी नज़र हटाने मे असमर्थ हूँ। यह कोई कहानी नही, बल्कि एक ऐसी वास्तविक सच्चाई है जिसका जवाब नहीं और जो सबकी समझ में आ सकती है।

जीवन के आनन्द की वंचनायें, जो मेरे अज़दहे के भय को दबा रखती थीं, अब मुझे धोका देने मे असमर्थ हैं। चाहे मुझसे कितनी ही बार कहा जाय कि—'तुम जिन्दगी का मतलब नही समझ सकते, इसलिए उसके बारे में कुछ मत सोचो और जिओ', मैं अब ऐसा नही कर सकता; मैने काफ़ी अरसे तक इसे कर लिया है। अब मै दिन-रात को चक्कर काटते और मेरी मौत को नजदीक लाते देख रहा हूँ और इससे आँख मूँदने मे असमर्थ हूँ। मैं इतना ही देख पाता हूँ, क्योंकि इतना ही सत्य है। बाकी सब झूठा है।

शहद की जिन दो बूँदों ने औरो की बनिस्बत ज़्यादा दिन तक इस निष्ठुर सत्य से मेरी आँखों को दूर रक्खा, वे है · कुटुम्ब के प्रति मेरा प्रेम और लिखने की तरफ़ मेरी आसक्ति, जिसे मै कला के नाम से पुकारता था। पर अब इन बूँदो में भी मिठास नही मालूम पड़ती थी।

मैंने अपने मन मे कहा—'कुटुम्ब' . पर मेरा कुटुम्ब—पत्नी और बच्चे—भी तो मानवीय है। उनकी भी वही स्थिति है जो मेरी है; उनको भी या तो झूठ के बीच रहना है या फिर भयकर सत्य को देख लेना है। वे क्यो जियें? मै उन्हे क्यों प्यार करूँ, क्यो उनकी हिफ़ाज़त करूँ और क्यों उनका पालन-पोषण या देख-रेख करूँ? इसलिए कि वे मेरी तरह नाउम्मेदी

और निराशा का अनुभव करे या फिर मूर्खता मे पडे रहें ? जव मै उन्हें प्यार करता हूँ तब उनसे सत्य को कैसे छिपा सकता हूँ और ज्ञान—जानकारी—का हरएक कदम उनको सत्य के नजदीक ले जाता है। और सत्य ही मौत है।

'कला, कविता ?' कामयाबी और लोगों के मुँह से तारीफ़ होने के कारण मैंने बहुत दिनों पहले से अपने दिल को समझा रक्खा था कि यह ऐसी चीज़ है जिसे आदमी करता रह सकता है—गो मौत नज़दीक आती जा रही थी—वह मौत जो सव चीजों को नष्ट कर देती है, मेरी रचना और उसकी याद को भी। लेकिन जल्द ही मैंने देख लिया कि यह भी एक धोखा ही है। मुझे ज़ाहिर था कि कला जीवन का आभूषण है, जीवन का प्रलोभन है। लेकिन मेरे लिए जीवन का आकर्षण दूर हो चुका था; तब दूसरों को मैं कैसे आकर्षित करता ? जबतक मै खुद अपनी जिन्दगी नहीं विताता था, बल्कि किसी जुदी जिन्दगी की लहरो पर वह रहा था—जबतक मेरा विश्वास था कि जीवन के कुछ मानी (तात्पर्य) है, फिर चाहे उसे मै व्यक्त न कर सकूँ—तबतक कविता और कला मे जीवन की छाया या विचार पाकर मुझे खुशी होती थी; कला के आइने मे जीवन के दर्शन करना अच्छा लगता था। लेकिन जव मैंने जीवन का तात्पर्य जानने की कोशिश शुरू की और मुझे खुद अपनी ज़िन्दगी विताने की ज़रूरत महसूस हुई, तब वह आईना मेरे लिए अनावश्यक, फालतू, बेहूदा और दुखदाई हो गया। अब मै आईने में देखता था कि मेरी स्थिति मूर्खतापूर्ण और निराशा से भरी हुई है। इसलिए अब मुझे इससे शान्ति नही मिलती थी। जब अपनी अन्तरात्मा की गहराई मे मै विश्वास करता था कि जीवन का कुछ अर्थ है तबतक दृश्य देखने मे सुहावना लगता था, उस वक्त जीवन मे प्रकाश के खेलों—हास्यजनक, दुखान्त, करुणाजनक, सुन्दर और भयंकर—से मेरा मनोरजन होता था। पर जब मै जान गया कि जिन्दगी बेमानी और भयंकर है, तव आईने मे प्रकाश के खेल मेरा दिल न बहला सकते थे। जब मैंने अजदहे को देख लिया और यह भी देख लिया कि मैं जिस चीज़ का

सहारा लिये हुए हूँ उसे चूहे काट रहे हैं तब शहद की कोई मिठास मुझे कैसे मीठी लग सकती थी ?

फिर बात यहीं तक न थी। और मैंने सिर्फ़ इतना ही समझा होता कि ज़िन्दगी के कोई मानी नही हैं तो मै यह मान लेता कि मेरी किस्मत मे यही था और इसलिए शान्ति से सब कुछ बर्दाश्त कर लेता। लेकिन मैं अपने को इतने से ही सन्तुष्ट न कर सका। अगर मै जंगल में रहनेवाले उस आदमी की तरह होता जो जानता है कि इससे निकलने का कोई रास्ता नही है तो मैं जी सकता था; पर मेरी दशा तो उस आदमी की तरह थी जो जंगल में रास्ता भूल जाने के कारण, भयभीत होकर, रास्ता ढूँढने के लिए, इधर-उधर दौड़ता फिरता हो। वह जानता है कि हरएक कदम उसे ज़्यादा उलझन में डाल रहा है, फिर भी वह दौड़ना बन्द नही करता।

निश्चय ही यह भयंकर अवस्था थी। और भय से बचने के लिए मैं खुद अपने को ही मार डालना चाहता था। आगे मेरा क्या होनेवाला है, इसका ख़ौफ़ भी मैं महसूस करता था और जानता था कि यह भय मेरी मौजूदा हालत से भी कही खराब है। इतने पर भी मै शान्तिपूर्वक अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा नही कर सकता था। चाहे यह दलील कितनी ही ज़ोरदार या यकीन दिलानेवाली लगती रही हो कि किसी दिन दिल की शिरा या और कोई चीज़ फट पड़ेगी और सब कुछ ख़त्म हो जायगा, पर मै शान्ति के साथ उस दिन की बाट जोहने मे असमर्थ था। अन्धकार का भय बहुत ज्यादा था और मै गले मे फॉसी डालकर या गोली मारकर, मतलब किसी तरह इससे जल्दी-से-जल्दी छूटना चाहता था। यह अनुभूति बडे ज़ोरों से मुझे आत्महत्या की ओर ले जा रही थी।

: ५ :

'लेकिन शायद मैने किसी चीज को नज़रअन्दाज़ कर दिया है या कोई चीज़ समझने में मुझसे ग़लती हो गई है ?' मै कई बार अपने से कहा करता । 'यह तो नहीं हो सकता कि निराशा या मायूसी की यह हालत इन्सान के लिए स्वाभाविक हो ।' तब मैने मनुष्य द्वारा सीखे हुए ज्ञान की विविध शाखाओं में इन मसलो का हल ढूंढ़ने की कोशिश की । आलस्य से भरी उत्कण्ठा से या उदासीनता के साथ मैंने यह खोज नहीं की, बल्कि कष्ट उठाकर लगातार रात-दिन उसकी खोज में लग गया, जैसे कोई नष्ट होता हुआ आदमी अपनी रक्षा के लिए कोशिश करता है । लेकिन मुझे कुछ नहीं मिला ।

मैंने सभी विज्ञानों में इन मसलो का हल खोजा, पर जो कुछ मै खोजता था उसे पाना तो दूर रहा, उलटे मुझे यकीन हो गया कि मेरी तरह जितने लोगो ने भी ज्ञान में जीवन के अर्थ—ज़िन्दगी के मानी—की खोज की है, उनको कुछ नहीं मिला है । सिर्फ़ इतना ही नहीं कि उनको कुछ न मिला हो; बल्कि उनको साफ़-साफ़ कहना पड़ा कि जिस चीज—यानी जीवन की व्यर्थता वा अज्ञानता—ने मुझको इतना निराश कर रक्खा है वही एक ऐसी असंदिग्ध बात है जिसे आदमी जान सकता है ।

मैंने सभी जगह खोजा; और चूँकि मेरा जीवन ज्ञान की साधना मे ही बीता था और विद्वानो की दुनिया से मेरा जैसा ताल्लुक था उसकी वजह से ज्ञान की सभी शाखाओं मे वैज्ञानिको और विद्वानों तक मेरी पहुँच थी । उन्होंने बड़ी ख़ुशी के साथ अपना सारा ज्ञान, न सिर्फ़ किताबो मे, बल्कि बात-चीत के जरिये भी, मुझे दिखाया जिससे विज्ञान को ज़िन्दगी के सवाल पर जो कुछ कहना था उस सबकी जानकारी मुझे हो गई ।

बहुत दिनों तक मै यह यकीन करने में असमर्थ रहा कि यह (विज्ञान) ज़िन्दगी के सवालो का दरअसल जो जवाब देता है उसके अलावा दूसरा कोई जवाब नही दे सकता। जब मैने उस महत्त्वपूर्ण और गम्भीर मुद्रा को देखा जिसके साथ विज्ञान अपने उन नतीजों या परिणामो का एलान करता है जिनका इंसान की ज़िन्दगी के असली सवालों के साथ कोई ताल्लुक नही, तो बहुत दिनों तक मैं यही समझता रहा कि इसमें कोई ऐसी वात जरूर है जिसे मैं नही समझ पाया हूँ। वहुत दिनों तक मैं विज्ञान के सामने भीरु बना रहा और मुझे ऐसा मालूम होता रहा कि मेरे सवालों और उनके जवावों के वीच एक-रूपता या समानता का अभाव विज्ञान के दोष के कारण नहीं है, बल्कि मेरी नादानी के कारण है। लेकिन मेरे लिए यह कोई खेल या दिलवहलाव का मामला नही था, वल्कि ज़िन्दगी और मौत का सवाल था, इसलिए मैं अनिच्छा से या मजबूर होकर इस निश्चय पर पहुँचा कि मेरे सवाल ही उचित सवाल हैं जो सारे ज्ञान के आधार का निर्माण करते हैं और निन्दा मेरी तथा मेरे सवालो की नहीं, वल्कि विज्ञान की होनी चाहिए अगर वह इन सवालों का जवाव देने का छल करता है।

मेरा सवाल,—जिसने ५० सालकी उम्र में मुझे आत्म-हत्या के नज़दीक पहुँचा दिया,—एक वहुत ही सीधा और आसान सवाल था, जो मूर्ख बच्चे से लेकर एक बड़े अक़्लमन्द बुजुर्ग तक सबकी आत्मा के अन्दर पड़ा रहता है। यह एक ऐसा सवाल था जिसका जवाब दिये बग़ैर कोई जी नहीं सकता, जैसा कि मैने तजुर्बे से समझा है। सवाल यह था 'मैं आज जो कुछ कर रहा हूँ या कल जो कुछ करूँगा उसका नतीजा क्या निकलेगा—मेरी सारी जिन्दगी का क्या नतीजा निकलेगा?'

दूसरी तरह से कहा जाय तो इस सवाल का यह रूप होगा : "मैं क्यों जिऊँ? क्यों किसी चीज़ की इच्छा करूँ? क्यों कोई काम करूँ?" इसे यों भी ज़ाहिर किया जा सकता है "क्या मेरे जीवन का कोई ऐसा तात्पर्य है कि मेरी वाट जोहती हुई अनिवार्य मृत्यु से भी उसका नाश न होगा?"

कई तरह से ज़ाहिर किये जाने वाले इस एक सवाल का जवाब मैंने विज्ञान से जानना चाहा और मुझे पता चला कि इस सवाल के बारे में इंसान का सारा ज्ञान दो गोलार्द्धों मे बँटा हुआ है जिनके दोनो सिरों पर दो ध्रुव हैं—एक निषेधात्मक और दूसरा निश्चयात्मक। लेकिन न पहले और न दूसरे सिरे पर ज़िन्दगी के सवालों का जवाब मिलता है।

विज्ञानों की एक माला ऐसी है जो इस सवाल को स्वीकार नहीं करती, पर साफ़ और ठीक तौर पर खुद अपने स्वतन्त्र सवालों का जवाब देती है। मेरा मतलब प्रयोगात्मक या अमली विज्ञानों की माला से है जिसके आख़िरी छोर पर गणित है। विज्ञानों की एक दूसरी माला ऐसी है जो इस सवाल को स्वीकार करती है, लेकिन इसका जवाब नहीं देती; यह निगूढ विज्ञानों की माला है, और इसके अन्तिम छोर पर अध्यात्म विज्ञान है।

शुरू जवानी से ही निगूढ विज्ञानों मे मेरी दिलचस्पी थी, लेकिन बाद में गणित एवं प्राकृतिक विज्ञानो की ओर मेरा आकर्षण हो गया, और जबतक मैंने निश्चय रूप से अपना सवाल अपने तई पेश नहीं किया, जबतक वह सवाल खुद मेरे अन्दर बढकर मुझे तुरन्त जवाब देने के लिए मजबूर नही करने लगा तबतक मैंने उन नकली जवाबों पर ही सन्तोष किया, जो विज्ञान देता है।

प्रयोगात्मक विज्ञान के क्षेत्र में तो मैंने अपने से यह कहा—"हरएक चीज़ जटिलता और पूर्णता की तरफ़ बढ़ती हुई खुद विकसित होती और भिन्नता वा विशेषता प्राप्त करती है और कुछ कानून हैं जो इस गति का नियन्त्रण करते हैं। तुम सम्पूर्ण का एक अंश हो। जहाँ तक जानना सम्भव है तहाँ तक सम्पूर्ण को जान लेने और विकास के नियम की जानकारी हासिल कर लेने पर तुमको सम्पूर्ण में अपने स्थान का पता भी चल जायगा और तुम अपने को भी जान जाओगे।" मुझे कहते हुए शर्म आती है कि एक ऐसा वक्त था कि मैं इस उत्तर से सन्तुष्ट दीखता था। यह वही समय था जब मैं खुद ज़्यादा जटिल या पेचीदा बनता जा रहा था और मेरा विकास

हो रहा था। मेरे पुट्ठे (मॉस पेशियाँ) बढ और मज़बूत हो रहे थे; मेरी स्मरणशक्ति अच्छी होती जा रही थी, मेरी समझने-सोचने की शक्ति बढ़ रही थी; और अपने अन्दर की इस बाढ़ को महसूस करते हुए मेरे लिए यह सोचना स्वाभाविक था कि जगत् का नियम ऐसा ही होगा जिसमें मुझे अपनी ज़िन्दगी के सवाल का हल हासिल हो सकता है। लेकिन एक ऐसा वक्त आया जब मेरे अन्दर की बाढ रुक गई। मैंने महसूस किया कि मेरा विकास नहीं हो रहा है; बल्कि मै मुरझा रहा हूँ, मेरे पुट्ठे कमज़ोर होते जाते हैं, मेरे दाँत गिरते जाते हैं, और मैंने देखा कि कानून न सिर्फ़ कोई बात मुझे समझाता नही, बल्कि कभी ऐसा कानून नहीं था, न कभी हो सकता है और मैंने अपनी ज़िन्दगी की किसी अवस्था में अपने अन्दर जो कुछ पाया उसे ही कानून मान लिया था। अब मैंने इस कानून की परिभाषा पर ज़्यादा ग़ौर करना शुरू किया तो मेरे सामने यह बात स्पष्ट हो गई कि इस तरह अनन्त विकास या बाढ़ का कोई कानून (नियम) नहीं हो सकता। यह स्पष्ट हो गया कि यह कहना कि 'असीम अवकाश और समय में हरएक चीज़ बढ़ती है, ज्यादा पूर्ण और पेचीदा होती तथा भिन्नता वा विशेषता प्राप्त करती है' मानो कुछ न कहने के बराबर है। ये सब शब्द बेमानी हैं; क्योंकि असीम मे न कुछ जटिल है, न सरल है, न आगे बढना है, न पीछे हटना है, न अच्छा है, न बुरा।

फिर इन सबके ऊपर मेरा निजी सवाल कि 'मैं अपनी इच्छाओ के साथ क्या हूँ?', अनुत्तरित ही रहा। मैं समझ गया कि वे विज्ञान बड़े दिलचस्प हैं, बड़े आकर्षक हैं; पर जीवन के प्रश्न के ऊपर उनकी संगति या प्रयोग का जहाँ तक सवाल है वे उलटी दिशा में ही ठीक और स्पष्ट है। जिन्दगी के सवाल पर उनकी संगति जितनी ही कम बैठती है उतने ही यथार्थ और स्पष्ट वे हैं। वे जीवन के प्रश्न का जवाब देने की जितनी ही कोशिश करते हैं, उतने ही दुर्बोध—अस्पष्ट—और आकर्षणहीन होते जाते है। अगर कोई विज्ञानो के उस विभाग की तरफ़ ध्यान दे जो ज़िन्दगी के सवाल का जवाब देने की कोशिश करता है (इस विभाग में शरीरविज्ञान,

मनोविज्ञान, जीवविज्ञान, समाजविज्ञान वगैरा है) तो वहाँ उसे विचारो की आश्चर्यजनक दीनता, सबसे ज़्यादा अस्पष्टता, अप्रासंगिक प्रश्नों को हल करने का एक बिल्कुल अनुचित और झूठा दावा तथा हरएक आचार्य द्वारा दूसरे का, और अपने द्वारा अपनी ही बातों का भी, निरन्तर खण्डन होता दिखाई देगा। अगर हम उन विज्ञानों की तरफ देखते है, जिनका ज़िन्दगी के सवाल को हल करने से कोई सम्बन्ध नहीं है, पर जो खुद अपने विशेष वैज्ञानिक सवालों का जवाब देते है, तो इंसान की दिमाग़ी ताकत को देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता है, पर हम पहले से ही जान चुके होते हैं कि वे ज़िन्दगी के सवालों का कोई जवाब नहीं देते। वे तो जीवन के प्रश्नों की उपेक्षा करते है। उनका कहना है 'तुम क्या हो और क्यों जीते हो, इस सवाल का न तो हमारे पास जवाब है और न उसके बारे मे हम सोचते हैं। हाँ, अगर तुम प्रकाश और रासायनिक मिश्रणो के नियमों को जानना चाहो, अगर तुम चेतन पदार्थों के विकास के नियमों से अवगत होना चाहो, अगर तुम देह और उनके रूप के कानूनों की जानकारी हासिल करना चाहो, अगर तुम गुण और परिमाण का सम्बन्ध जानना चाहो, अगर तुम अपने मस्तिष्क के नियमों का ज्ञान प्राप्त करना चाहो तो इन सबके हमारे पास स्पष्ट, यथार्थ और निर्विवाद उत्तर मौजूद है।'

साधारण ढंग से कहना चाहें तो जीवन के सवालो के साथ प्रयोगात्मक विज्ञानों के सम्बन्ध को यो व्यक्त किया जा सकता है प्रश्न—'हम क्यो जी रहे है ?' उत्तर—'अनन्त अवकाश और अनन्त काल मे अत्यन्त क्षुद्र अश अनन्त जटिलताओं वाले रूपो को ग्रहण करते हैं। जब तुम इस रूप-परिवर्तन के नियमों को समझ लोगे तब तुम यह भी जान जाओगे कि पृथ्वी पर क्यों रह या जी रहे हो ?'

इसके बाद मैंने गूढ या सूक्ष्म विज्ञानो के क्षेत्र मे अपने से कहा—'सम्पूर्ण मानवता आध्यात्मिक सिद्धान्तों और आदर्शों के आधार पर जीती और विकसित होती है। यही सिद्धान्त और आदर्श उसका पथ-प्रदर्शन करते हैं। ये आदर्श धर्म, विज्ञान, कला और शासन-पद्धति मे व्यक्त होते हैं।

ये आदर्श दिन-दिन ऊँचे होते जाते है और मानवता अपने सर्वोच्च कल्याण की ओर वढती जाती है। मै मनुष्यता का अंश हूँ, इसलिए मेरा धन्धा मानवता के आदर्शों की स्वीकृति और साधना को आगे बढ़ाना है।' और अपनी मानसिक दुर्बलता के जमाने में मैं इस उत्तर से सन्तुष्ट था; पर ज्योंही ज़िन्दगी का सवाल मेरे सामने स्पष्ट रूप मे आया, ये विचार तुरन्त टुकड़े-टुकड़े होकर ख़त्म हो गये। जिस सिद्धान्तहीन दुर्बोधता के साथ ये विज्ञान मनुष्य-जाति के एक छोटे हिस्से पर किये गये अध्ययन के बल पर स्थापित परिणामों को सामान्य परिणामों के रूप मे व्यक्त करते है, जिस प्रकार मनुष्यता के आदर्शों के विषय मे इसके विभिन्न अनुयायी एक दूसरे के मत का खण्डन करते हैं, इन बातों को छोड़ भी दें तो भी इस विचार-धारा का आश्चर्य यह है कि हर आदमी के सामने आने वाले सवालो ('मैं क्या हूँ ?' या 'मैं क्यो जीता हूँ ?' या 'मुझे क्या करना चाहिए ?') का जवाव देने के लिए पहले इस सवाल का जवाव ढूँढना ज़रूरी समझा जाता है कि 'समष्टि का जीवन क्या है' (और यह उसके लिए अज्ञात है और समय की एक अत्यन्त क्षुद्र अवधि मे वह इसके एक अत्यन्त क्षुद्र अंश से ही परिचित है)। इस मत से यह जानने के लिए कि वह क्या है, मनुष्य को पहले सारी रहस्यमयी मानव-जाति की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए—उस मानव-जाति की, जिसमे उसी की तरह अगणित आदमी है, जो एक-दूसरे को नहीं समझते जानते।

मै मंजूर करता हूँ कि ऐसा भी एक ज़माना था जब मैं इन बातो मे विश्वास करता था। यह वही ज़माना था जव अपनी सनकों को उचित ठहराने वाले कुछ प्रिय आदर्श मैंने वना रक्खे थे और एक ऐसा सिद्धान्त या विचार-प्रणाली का निर्माण करने का मै प्रयत्न कर रहा था जिससे मेरी सनकों को ही मानवता का कानून माना जा सके। लेकिन ज्योंही मेरी आत्मा मे ज़िन्दगी का सवाल पूरी स्पष्टता के साथ ज़ाहिर हुआ, त्योंही यह जवाव मिट्टी मे मिल गया और मैंने समझ लिया कि जैसे प्रयोगात्मक वा क्रियात्मक विज्ञानो मे ऐसे सच्चे विज्ञान और अधूरे विज्ञान हैं जो अपनी शक्ति और

योग्यता के बाहर के सवालों का जवाब देने की कोशिश करते हैं उसी तरह इस क्षेत्र मे भी ऐसे मिश्र विज्ञानो की एक पूरी मालिका ही है जो अप्रासंगिक प्रश्नों का जवाब देने की कोशिश करते हैं। इस तरह के अधूरे विज्ञान (न्यायविधान-सम्बन्धी या कानूनी और सामाजिक-ऐतिहासिक) अपने-अपने ढंग पर, सम्पूर्ण मानवता के जीवन के सवाल को हल करने का बहाना करते हुए मनुष्य के जीवन के सवालों को हल करने की चेष्टा करते हैं।

पर मनुष्य के प्रयोगात्मक ज्ञान के क्षेत्र में जो व्यक्ति सचाई के साथ इस बात का शोध करता है कि उसे किस तरह जीवन बिताना चाहिए उसको जैसे इस उत्तर से सन्तोष नहीं हो सकता कि—'असीम अवकाश मे अनन्त काल और अनन्त जटिलता वाले, असंख्य अणुओं के परिवर्तनों का अध्ययन करो, तब तुम जीवन को समझ सकोगे,—वैसे ही एक ईमानदार आदमी इस उत्तर से भी सन्तुष्ट नहीं हो सकता कि—'मानव-जाति के उस सारे जीवन का अध्ययन करो, जिसके आदि-अन्त को भी हम नहीं जान सकते और जिसके बारे में एक अंश का भी हमे ज्ञान नहीं है, तब तुम अपनी ज़िन्दगी को समझ सकोगे।' प्रयोगात्मक अधूरे विज्ञानों की तरह ये दूसरी तरह के अर्द्ध-विज्ञान भी अस्पष्टताओं, अयथार्थताओं, मूर्खताओं और पारस्परिक विरोधों या खण्डनों से पूर्ण हैं। प्रयोगात्मक या क्रियात्मक विज्ञान की समस्या तो भौतिक व्यापार मे कार्य-कारण के अनुक्रम वा परम्परा की समस्या है। पर क्रियात्मक विज्ञान ज्योंही एक अन्तिम कारण का प्रश्न उपस्थित करता है त्योंही वह मूर्खतापूर्ण वा निरर्थक हो जाता है। सूक्ष्म विज्ञान की समस्या जीवन के आदिम वा मूलतत्त्व की पहचान और स्वीकृति की समस्या है। ज्योंही पारस्परिक व्यापार की खोज आरम्भ होती है यह भी मूर्खतापूर्ण बन जाता है।

क्रियात्मक विज्ञान जब अपने शोध मे अन्तिम कारण का सवाल नहीं उठाता तभी निश्चयात्मक ज्ञान देता और इन्सान के दिमाग़ की महानता को ज़ाहिर करता है। इसके ख़िलाफ सूक्ष्म (Abstract) विज्ञान जब दृश्य व्यापार के पारस्परिक कारणों से सम्बन्ध रखनेवाले सवालों को किनारे रख

देता है और आदमी को सिर्फ अन्तिम कारण के सम्बन्ध से देखता है तभी वह विज्ञान होता है और तभी मानवीय मस्तिष्क की महानता का प्रदर्शन करता है। विज्ञान के इस राज्य में, गोलक के ध्रुव रूप में, अध्यात्म-विद्या या तत्त्व-दर्शन है। यह विज्ञान इस सवाल का स्पष्ट वर्णन करता है कि 'मै क्या हूँ और जगत् क्या है? मेरा अस्तित्व क्यो है और जगत् का अस्तित्व क्यो है?' जब से इसका अस्तित्व है यह इसी तरह उत्तर देता रहा है। चाहे दर्शन-शास्त्री मेरे अन्दर मौजूद जीवन-तत्त्व को, या अन्य सब चीज़ों के अन्दर के जीवन के सार को, 'धारणा', 'सार', 'भावना' (स्पिरिट) अथवा 'संकल्प-शक्ति' किसी भी नाम से पुकारे, असल मे वह एक ही बात कहता है कि यह तत्त्व मौजूद है और मै उसी तत्त्व से बना हूँ; पर यह क्यों है, इसे वह नहीं जानता और अगर वह सच्चा चिन्तक है तो ऐसा कहता भी नही। मैं पूछता हूँ · 'यह तत्त्व वा सार मौजूद ही क्यों रहे? यह है और रहेगा। इससे नतीजा क्या निकलता है?'. . दर्शन न केवल इसका कोई उत्तर नही देता, बल्कि वह स्वयं यही प्रश्न पूछता रहता है। और अगर वह सच्चा दर्शन है तो उसकी सारी चेष्टा इस प्रश्न को स्पष्टतापूर्वक रखने तक ही है। अगर वह दृढतापूर्वक अपना काम करे तो सवाल का जवाब सिर्फ इस तरह देगा 'मैं क्या हूँ और जगत् क्या है?'—'सब कुछ और कुछ भी नहीं।' इसी तरह वह 'क्यों' के जवाब मे कहेगा—'मैं नही जानता।'

इस तरह मै दर्शन-शास्त्र के इन जवाबों को चाहे जिस तरह उलटूँ-पलटूँ, मुझे उनसे जवाब-जैसी कोई चीज कभी हासिल नही हो सकती—इसलिए नही कि स्पष्ट क्रियात्मक क्षेत्र की तरह उत्तर का मेरे सवाल से कोई सम्बन्ध नही, बल्कि इसलिए कि सम्पूर्ण मानसिक कार्य की गति मेरे सवाल की ओर होते हुए भी, उसका कोई उत्तर ही नहीं है और उत्तर की जगह वही सवाल हमे एक जटिल रूप में सुनाई पड़ता है।

: ६ :

ज़िन्दगी के सवालों के जवाब की खोज मे मुझे ठीक वही अनुभव हुआ जो जंगल मे रास्ता भूल जाने वाले आदमी को होता है।

वह जगल के बीच की खुली ज़मीन मे पहुँचता है, किसी वृक्ष या दरख़्त पर चढ जाता है और उसे दूर तक की जगहे दिखाई देती है। इस दूरी की कोई सीमा नहीं है, पर वह देखता है कि उसका घर उधर नही है, न हो सकता है। तब वह फिर घने जंगल में घुस जाता है। वहाँ उसे अँधेरा दिखता है, पर घर का वहाँ भी कुछ पता नहीं चलता।

इसी तरह मैं मानवीय ज्ञान के जंगल मे भटकता रहा। कभी मैं गणित-सम्बन्धी तथा प्रयोगात्मक विज्ञानों या अमली साइंसो की झलक मे भटकता; इस झलक मे मुझे क्षितिज तो साफ़-साफ़ दिखाई देता रहा, पर उसी दिशा मे जिधर घर नही हो सकता था। कभी मैं सूक्ष्म वा कल्पनात्मक विज्ञानों के अँधेरे मे भटकता फिरता। मैं इनमे जितना ही आगे बढा उतना ही गहरे अंधकार मे फॅसता गया और मुझे विश्वास हो गया कि इससे बाहर निकलने का रास्ता न है, न हो सकता है।

ज्ञान के प्रकाशमान या रौशन पहलू की तरफ़ झुककर मैंने समझा कि मै सिर्फ़ सवाल से अपना ध्यान हटा रहा हूँ। मेरे सामने खुलनेवाले क्षितिज चाहे जितने ही लुभावने रूप मे स्पष्ट हों, और उन विज्ञानों के असीम विस्तार मे प्रवेश करना चाहे कितना ही आकर्षक क्यों न हो, मै समझ चुका था कि वे जितना ही स्पष्ट और साफ़ होते हैं उतना ही मेरे लिए बेकार हैं और उतना ही मेरे सवाल का कम जवाब देते हैं।

मैंने अपने से कहा—'मैं जानता हूँ कि विज्ञान इतनी लगन के साथ किसका शोध करना चाहता है और यह भी जानता हूँ कि उस रास्ते पर

चलकर मेरी ज़िन्दगी का क्या प्रयोजन है, इस सवाल का जवाब नही मिल सकता।' गूढ वा सूक्ष्म विज्ञानों के क्षेत्र में मैने समझा कि यद्यपि विज्ञान का सीधा लक्ष्य मेरे सवाल का जवाब देना है, पर इसके बावजूद भी मेरे सवाल का कोई जवाब नही है—सिवाय उस जवाब के जो मै ख़ुद दे चुका हूँ 'मेरी ज़िन्दगी का मतलब क्या है?' जवाब· 'कुछ नही', 'मेरे जीवन का नतीजा क्या होगा?' जवाब—'कुछ नही', 'जितनी भी चीजें मौजूद हैं उनका अस्तित्व क्यों है, और मेरा अस्तित्व क्यों है?' जवाब—'क्योंकि अस्तित्व है।'

ज्ञान के एक क्षेत्र मे सवाल करने पर मुझे उन बातों के बारे मे असख्य परिमाण में ठीक-ठीक उत्तर प्राप्त हुए जिनके सम्बन्ध मे मैने कुछ नही पूछा था—जैसे तारों के रासायनिक उपकरण, हरक्यूलीज़ नक्षत्र समूह की ओर सूर्य की गति, प्राणियों एवं मनुष्य की उत्पत्ति, ईथर के अत्यन्त सूक्ष्म कणों के रूप के विषय मे। परन्तु ज्ञान के इस क्षेत्र मे मेरे सवाल—'मेरे जीवन का तात्पर्य क्या है?'—का सिर्फ़ यही जवाब था कि—'तुम वही हो जिसे तुम अपना "जीवन" कहते हो, तुम कणों के एक आकस्मिक और अनित्य सघटन हो। इन कणो की पारस्परिक अन्त क्रियायें और तब्दीलियाँ तुम मे वह चीज़ पैदा करती है जिन्हें तुम अपना "जीवन" कहते हो। यह संघटन कुछ समय तक चलता रहेगा। इसके बाद इन कणो की अन्त क्रियायें बन्द हो जायँगी और जिसे तुम "जीवन" कहते हो वह भी बन्द हो जायगा और साथ ही तुम्हारे सब सवालों का भी अन्त हो जायगा। तुम किसी चीज़ के अकस्मात् जुड़कर बन गये छोटे पिंड हो। इस क्षुद्र पिण्ड में उत्तेजन वा उबाल आता है। इसी को वह क्षुद्र पिण्ड अपना "जीवन" कहता है। पिण्ड बिखर जायगा, जोश वा उत्तेजन का अन्त हो जायगा और साथ ही सब सवाल भी ख़त्म हो जायँगे।' विज्ञान का स्पष्ट पहलू इस तरह जवाब देता है और अगर वह अपने उसूल पर ठीक-ठीक चले तो इसके सिवा दूसरा जवाब दे ही नही सकता।

इस तरह के जवाब से कोई भी आदमी देख सकता है कि इससे सवाल का कोई जवाब नही मिलता। मै अपने जीवन का तात्पर्य जानना चाहता हूँ,

पर 'यह असीम का एक क्षुद्र अंश है' इस प्रकार का उत्तर जीवन को कोई अभिप्राय सौंपने की जगह उसके प्रत्येक सम्भव तात्पर्य को नष्ट कर देता है। प्रयोगात्मक विज्ञान का यह पक्ष सूक्ष्म वा गूढ विज्ञान से जो अस्पष्ट समझौते करता और कहता है कि जीवन का मर्म विकास एवं विकास के साथ सहयोग मे निहित है तब इनकी अयथार्थता और स्पष्टता के कारण इन्हें उत्तर नही माना जा सकता।

विज्ञान का दूसरा यानी गूढ पक्ष, जब अपने उसूलों को दृढतापूर्वक पकड़कर चलता है और इस सवाल का सीधा जवाब देना चाहता है तो वह सदा यह एक ही जवाब एक ही तरह से देता है, सब युगो मे देता रहता है: 'जगत् असीम और अचिन्त्य है। मानव-जीवन उस अचिन्त्य 'समष्टि' का एक अचिन्त्य अंश है।' फिर मैं गूढ एवं प्रयोगात्मक विज्ञानों के उन सब समझौतों या मिश्रणो को अलग रख देता हूँ जो न्यायविज्ञान सम्बन्धी, राजनीतिक और ऐतिहासिक नामधारी अर्द्ध-विज्ञानों के एक पूरे 'वैलेस्ट' (बोझ) की सृष्टि करते है। इन अर्द्ध-विज्ञानों मे भी विकास और प्रगति की धारणायें ग़लत रूप मे पेश की जाती हैं, फ़रक सिर्फ इतना होता है कि वहाँ प्रत्येक वस्तु की प्रगति की बात थी और यहाँ मनुष्य-जाति के जीवन के विकास की बात है। इसमे भी भूल पहले की तरह ही है असीम मे विकास और प्रगति का कोई लक्ष्य या निर्देश नही हो सकता, और जहाँ तक मेरे सवाल का ताल्लुक है, कोई जवाब नहीं मिलता।

सच्चे गूढ विज्ञान मे यानी सच्चे दर्शनशास्त्र मे (उसमे नहीं जिसे शापन-हावर 'प्रोफेसोरियल फिलासफ़ी' या अध्यापकीय—किताबी—तत्वज्ञान कहता है जो सारी मौजूदा चीज़ों को नये दार्शनिक विभागों मे बाँटता है और उन्हें नये-नये नामों से पुकारता है), जहाँ दार्शनिक तात्विक प्रश्न की ओर से अपनी दृष्टि नहीं हटाता, एक ही उत्तर मिलता है। यह वही उत्तर है जिसे सुकरात, शापनहावर, सोलोमन (सुलेमान) और बुद्ध देते रहे हैं।

सुकरात जब मरने की तैयारी कर रहा था तब उसने कहा था—'हम ज़िन्दगी से जितनी ही दूर जाते है उतना ही सत्य के नज़दीक पहुँचते है;

क्योंकि हम, जो सत्य के प्रेमी है, ज़िन्दगी में भी आख़िर किस चीज़ को पाने का प्रयत्न करते है ? दैहिक जीवन से पैदा होनेवाली सब बुराइयों, तथा स्वयं देह से मुक्ति का ही न ? अगर यह बात है तब मौत को पास आई देख हम ख़ुश हुए बिना कैसे रह सकते हैं ?

'ज्ञानी पुरुष अपनी सारी ज़िन्दगी भर मृत्यु की साधना करता है, इसलिए मृत्यु उसके लिए भयंकर नहीं होती।'

और शापनहावर कहता है

'जगत् की अत्यान्तरिक प्रकृति को 'संकल्प' वा 'इच्छा' के रूप मे पहचान लेने और प्रकृति की अस्पष्ट शक्तियों के अचेतन व्यापार से लेकर मनुष्य के पूर्णत चैतन्ययुक्त कार्यों तक प्रकृति के सम्पूर्ण गोचर पदार्थों को केवल उस 'संकल्प' वा 'इच्छा' की पादार्थिकता या सरूपता मान लेने पर उसकी शृङ्खला से हम भाग नहीं सकते और हमको मानना पडेगा कि स्वेच्छापूर्वक इस इच्छा का त्याग कर देने पर उसके द्वारा उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण गोचर पदार्थों का भी नाश हो जाता है, उन सम्पूर्ण अन्तहीन एव अविश्रान्त कार्य-परम्पराओं का लोप हो जाता है जिसके अन्दर और जिनके द्वारा संसार का अस्तित्व है, एक के बाद एक आनेवाले विविध रूपों का अन्त हो जाता है और रूप के साथ इच्छा वा संकल्प की सम्पूर्ण अभिव्यक्तियॉ भी समाप्त हो जाती हैं और अन्त में इस अभिव्यक्ति के जागतिक रूपों यानी काल और अवकाश, तथा इसके अन्तिम मौलिक रूप चेतना और पदार्थ (आत्मा और भूत) सबका अन्त हो जाता है। जहॉ 'संकल्प' नही है, वहॉ प्रदर्शन नही है और जगत् भी नहीं है। केवल शून्य ही रह जाता है। इस शून्यता की अवस्था तक पहुँचने मे हमारी प्रकृति बाधक होती है। और हमारी प्रकृति वही हमारी जीने की इच्छा (Wille Zum Leben) मात्र है—यही हमारी दुनिया है। हम विनाश से इतनी घृणा करते हैं या दूसरे शब्दो मे जीने की इच्छा रखते है, यह इस बात का सूचक है कि हम जीवन की दृढ़ कामना करते हैं। हम इस कामना या संकल्प के अतिरिक्त कुछ नही हैं और इसके अलावा और कुछ जानते भी नहीं है। इसलिए इस संकल्प

या इच्छा के सम्पूर्ण क्षय के पश्चात् जो कुछ बचता है, वह हमारे जैसे संकल्प से भरे हुए लोगो के लिए निश्चय ही कुछ नही है। पर इसके विरुद्ध जिनके अन्दर संकल्प का स्वयं क्षय हो गया है उनके लिए हमारी यह वास्तविक-सी लगनेवाली दुनिया, अपने सम्पूर्ण सूर्यों एवं आकाशगंगाओ के साथ भी, शून्य ही है।'

सुलेमान कहता है—"वृथाभिमान का अभिमान, वृथाभिमान का अभिमान!—सब निस्सार है, वृथाभिमान है! आदमी सूर्य के नीचे जो सारी मेहनत करता है उससे उसे क्या फायदा होता है? एक पीढी जाती है और दूसरी आती है लेकिन पृथ्वी सदा बनी रहती है. जो चीज पहले रही है, वही आगे भी होगी, जो काम किया गया है वह वही है जो आगे भी किया जायगा: सूर्य के नीचे (दुनिया मे) कोई भी चीज नई नहीं है। क्या कोई ऐसी चीज है जिसे देखकर कहा जा सके—देखो, यह नई है? जो है वह पुराने जमाने में पहले ही रह चुकी है। पूर्व वस्तुओं को कोई याद नही करता, आगे जो आवेंगे उनके साथ आनेवाली चीजो को भी लोग याद नहीं रक्खेंगे—भूल जायँगे। मैं उपदेशक एक दिन जरूसलम मे इसराइलों का बादशाह था। और मैने ज्ञान के सहारे आकाश के नीचे की वस्तुओं का शोध करने में अपना मन लगाया: यह तीव्र-वेदना ईश्वर ने मनुष्य के उपयोग के लिए प्रदान की है। दुनिया मे जितने काम किये जाते हैं सबको मैंने देखा है, वह सब मिथ्याहंकार और आत्मा का उद्वेग मात्र है।. मैंने स्वयं अपने हृदय मे ध्यान लगाया और कहा—'ओह! मैं बड़ी ऊँची अवस्था मे पहुँच गया हूँ और मेरे पहले जरूसलम मे जितने लोग हुए उन सबसे अधिक ज्ञान मुझे है। हाँ, मेरे हृदय को विवेक और ज्ञान का महान् अनुभव है।' और मैंने ज्ञान तथा पागलपन और मूर्खता को जानने मे मन लगाया। पर मैने अनुभव किया कि यह सब भी आत्मा या अन्तःकरण का उद्वेग ही है। क्योंकि अधिक ज्ञान में अधिक दुःख है: और जो अपने ज्ञान को बढाता है वह दुःख को भी बढा लेता है।

'मैंने अपने दिल मे कहा—'हटो, चलो, अब मैं प्रफुल्लता से तुझे सिद्ध

करूँगा, इसलिए सुख भोगूँगा। और देखो—यह भी मिथ्याहंकार है। मैंने हँसी के बारे मे' कहा यह उन्मत्त है· उल्लास के बारे में कहा. यह क्या कर सकता है? मैंने अपने मन में यह देखने की कोशिश की कि मैं अपने हाड-मांस यानी देह को शराब से कैसे ख़ुश रख सकता हूँ। मैंने इसकी कोशिश की कि मेरे हृदय में ज्ञान की ज्योति जगमगाती रहे और साथ ही मै बुराइयो में प्रवेश करके देखूँ कि मनुष्य जो इतने दिन जीता है तो उसकी ज़िन्दगी के लिए सबसे अच्छी बात क्या है। मैंने बडे-बडे काम किये, मैंने अपने लिये मकान बनवाये; अंगूर की खेती की; मैंने बगीचे और उपवन खड़े किये और उनमे तरह-तरह के फलो के वृक्ष लगवाये। बाग के वृक्षो को सीचने के लिए मैंने नहरें बनवाईं, मैंने दास और दासियाँ रक्खीं और ख़ुद अपने मकान में दास पैदा कराये, पशुओं और चौपायो का जैसा सग्रह मेरे पास था वैसा मेरे पहले जरूसलम मे कभी देखा नही गया था मैंने राजाओ और बादशाहों तथा सूबो से सोना-चाँदी, रत्न और आश्चर्यजनक कोष इकट्ठा किया। मेरे पास गायको और गायिकाओ की कमी न थी, सब तरह के वाद्य-यन्त्रो का, जिनसे मानव-जाति आनन्द-उपभोग करती है, मेरे पास ज़ख़ीरा था। इस तरह मै महान् था और मेरे पहले जरूसलम में जितने लोग हुए उन सबसे अधिक वैभव मेरे पास था। तिस पर मेरा विवेक और ज्ञान भी मेरे साथ था। मेरी आँखों ने जिस चीज की आकाक्षा की, मैंने उन्हे वही दिया। किसी तरह के सुख-भोग से मैंने अपने हृदय को वंचित नही रक्खा।...बाद में मैंने अपने उन सब कामों पर ग़ौर किया; उन सब चीज़ों पर ध्यान दिया जिन्हे पाने के लिए मैंने इतना श्रम किया था। मैंने देखा—सब मिथ्याहंकार और आत्मोद्वेग-मात्र है, इन चीज़ो से कुछ भी लाभ नही है। तब मैंने इन पर से अपना मन हटाकर ज्ञान, पागलपन और बुराई को देखने की कोशिश की.. पर मैंने अनुभव किया कि इन सब के साथ एक ही घटना घटित होती है। तब मैंने अपने दिल मे कहा कि मूर्ख के साथ भी वही बात होती है और मेरे साथ भी वही बात होती है, तब मै उससे अधिक बुद्धिमान् किस तरह हूँ? तब मैंने मन में

कहा कि यह भी एक मिथ्याहंकार ही है। क्योंकि जैसे मूर्ख की सदा याद नहीं रहती वैसे ही बुद्धिमान् को भी लोग सदा याद नहीं रखते, भूल ही जाते है। आज जो कुछ है वह सब लोग आने वाले दिनों यानी भविष्य मे भूल जायेंगे। और बुद्धिमान् आदमी कैसे मरता है? वैसे ही जैसे मूर्ख मरता है। इसलिए मेरी जीवन से घृणा हो गयी; क्योंकि संसार मे जो कुछ काम है सब दुःख से पूर्ण है, क्योंकि सब कुछ मिथ्याहकार और आत्मोद्वेग मात्र है। बस, मैंने अबतक जो कुछ किया था, जो काम किये थे, उन सबसे मुझे घृणा हो गयी, क्योंकि मैं देखता था कि इन सब को अपने बाद आनेवाले आदमी के लिए मुझे छोड़ जाना होगा। भला आदमी जो इतना श्रम करता और इतनी परेशानी उठाता है उसमे उसे क्या मिलता है? उसके सारे दिन शोक और दुःख से भरे हुए हैं, रात में भी उसके हृदय को कोई विश्राम नहीं मिलता। यह भी मिथ्याभिमान है। मनुष्य के जीवन को इतनी सुरक्षितता नहीं दी गयी है कि वह खाये, पीये और अपने काम-धाम से अपने हृदय को प्रफुल्ल रक्खे। सभी चीजें सब लोगों के पास एक ही तरह से आती हैं पुण्यात्मा और दुष्ट दोनो के साथ एक ही बात होती है, अच्छे और बुरे, स्वच्छ और अस्वच्छ, त्याग करने वाले और त्याग न करने वाले, सज्जन और पापी, कसम खाने वाले और कसम से डरने वाले सब के लिए एक ही बात है। सूर्य के नीचे (दुनिया मे) जो कुछ किया जाता है उस सब मे यही दोष है कि सब के साथ एक ही घटना घटित होती है। आह! मानव-पुत्रों का हृदय बुराइयो से भरा हुआ है और जबतक वे जीते है उनके हृदय मे पागलपन रहता है और उसके बाद वे मृत्यु की गोद मे चले जाते हैं। जो जीवितो मे है उनके लिए आशा है, एक जीवित कुत्ता मरे हुए शेर से अच्छा है। क्योंकि जीवित जानते है कि वे मरेंगे, परन्तु मरे हुए को कुछ पता नहीं—न उनको कोई और पुरस्कार ही मिलता है। उनकी याद भी भुला दी जाती है। मौत के साथ ही उनके प्रेम, उनकी घृणा, उनके ईर्ष्या-द्वेष सब का अन्त हो जाता है। फिर कभी दुनिया मे किये जानेवाले किसी काम मे उनका कोई हिस्सा नहीं रहता।'

ये सुलेमान अथवा जिसने भी इसे लिखा हो उसके शब्द हैं।*

अब भारतीय ज्ञान का कथन भी सुनिए :

शाक्यमुनि एक तरुण और सुखी राजकुमार थे। उनसे बीमारी, बुढ़ापे और मृत्यु के अस्तित्व की बात छिपा रक्खी गयी थी। एक दिन वह सैर को निकले और उन्होंने एक अत्यन्त जीर्ण बूढ़े आदमी को देखा जिसके दाँत टूट गये थे और मुँह से फेन निकल रहा था। चूँकि राजकुमार से तबतक बुढ़ापे का अस्तित्व छिपाया गया था, इसलिए उनको यह दृश्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने कोचवान से पूछा—'यह क्या चीज़ है और इस आदमी की इतनी बुरी और दुखदाई हालत क्यों है?' जब उन्हें मालूम हुआ कि सभी आदमियों की किस्मत में यह बात लिखी है और ख़ुद उनकी भी, अनिवार्यतः वही हालत होगी तो वह आगे सैर जारी न रख सके। कोचवान को घर लौटने की आज्ञा दी ताकि वह इस घटना पर विचार कर सकें। घर लौटकर उन्होंने अपने को एक कमरे में बन्द कर लिया और घटना पर विचार करने लगे। शायद उन्होंने अपने दिल को किसी तरह समझा-बुझा लिया होगा, क्योंकि बाद में वह फिर प्रफुल्ल और सुखी होकर सैर को निकले। इस बार उनको एक बीमार आदमी दिखायी दिया। इस आदमी का शरीर सूख गया था, वह नीला पड़ रहा था, शरीर काँप रहा था और आँखों में अँधेरा छा रहा था। चूँकि राजकुमार से बीमारी के अस्तित्व की बात छिपायी गयी थी, इसलिए उन्होंने इस आदमी को देखते ही गाड़ी रोकवा दी और पूछा—'यह क्या बात है?' जब उन्हें मालूम हुआ कि यह बीमारी है जो सभी को होती है और ख़ुद स्वस्थ और प्रसन्न राजकुमार भी कल बीमार पड़ सकते हैं तो वह सैर का आनन्द भूल गये; घर लौटने की आज्ञा दी और शायद सोच-विचार के बाद अपने मन को किसी

---

* टाल्स्टाय का अनुवाद कई जगहों में प्रमाणिक माने जानेवाले अंग्रेजी अनुवाद से भिन्न है। यहाँ टाल्स्टाय का ही पाठ दिया गया है, क्योंकि उसने एक जगह लिखा है—'The Authorised English Version is bad' (प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद खराब है)।

तरह सान्त्वना देने में समर्थ हुए; क्योंकि दूसरे दिन वह फिर तीसरी बार सैर का आनन्द लेने के लिए निकले। पर इस बार भी उन्हें एक नया दृश्य दिखाई दिया : उन्होंने देखा कि लोग किसी चीज़ को कन्धे पर रक्खे लिए जा रहे हैं। पूछा—'वह क्या है ?' उत्तर मिला—'मुरदा है।' राजकुमार ने सवाल किया—'मुरदा क्या होता है ?' उनको बताया गया कि उस आदमी की-सी अवस्था मे हो जाने पर मुरदा कहते हैं। राजकुमार अर्थी के नज़दीक गये, कपड़ा हटाया और उसे देखा। पूछा—'अब इसका क्या होगा ?' लोगो ने कहा कि अब इसे जलायेंगे। 'क्यों ?' 'क्योंकि अब वह फिर जी नहीं सकता और उसके शरीर से सिर्फ बदबू और कीडे पैदा होंगे।' 'क्या सब आदमियो की यही गति होती है ? क्या मेरी भी यही हालत होगी ? क्या लोग मुझे भी जला देंगे ? क्या मेरे शरीर से भी बदबू पैदा होगी और उसे कीड़े खा जायेंगे ?' उत्तर मिला—'हाँ।' राजकुमार ने कोचवान से कहा—'घर लौटो। मै फिर कभी मज़े के लिए सैर-सपाटे को न निकलूँगा।'

तब से शाक्यमुनि के हृदय मे बेचैनी पैदा हुई। उनको जीवन मे कोई सान्त्वना न मिल सकी और उन्होंने निर्णय किया कि ज़िन्दगी सब से बड़ी बुराई है। उन्होंने अपनी आत्मा की सारी शक्ति इस बुराई से मुक्ति पाने और दूसरों को मुक्त करने मे लगा दी और इसे इस रूप मे करने की चेष्टा की कि मृत्यु के बाद फिर जीवन का चक्र न चल सके, बल्कि समूल उसका अन्त हो जाय।

यह भारतीय ज्ञान की वाणी है।

मानवीय ज्ञान जब जीवन के सवाल का जवाब देता है तब इसी तरह के सीधे जवाब उससे मिलते हैं।

'शरीर का, या दैहिक, जीवन बुरा एवं असत् है, और शून्यता (निर्वाण) का मार्ग ही जीवन मे एक अच्छाई है।' यह शापेनहावर का कथन है।

सुलेमान कहता है—'ज्ञान और अज्ञान, वैभव और गरीबी, सुख और दुःख—जो भी दुनिया में है सब मिथ्याहंकार और पोल है। आदमी मर जाता है और उसका कोई चिन्ह नहीं बचता। कैसी मूर्खता है!'

बुद्ध कहते है · 'दु ख की, कमज़ोर और वृद्ध होने तथा मृत्यु की अनिवार्यता की चेतना के बीच रहना असम्भव है। हमे जीवन, सब प्रकार के संभव जीवन के जाल से छूटना ही होगा।'

और इन महापुरुषो एवं चिन्तको ने जो कुछ कहा है उसे लाखो आदमियो ने कहा, सोचा और अनुभव किया है। मैंने भी इसे सोचा और महसूस किया है।

इस तरह विज्ञानो के बीच जो सैर मैंने की उससे अपनी निराशा से छूटने की जगह मैं उसमें और भी ज़ोरो के साथ फँसता गया। मायूसी की गॉठ और मज़बूत होती गयी। ज्ञान के एक प्रकार ने जीवन के सवाल का उत्तर ही नही दिया, दूसरे ने सीधे जवाब दिया और मेरी निराशा को पक्का कर दिया · उसने यह कहने की जगह कि जिस नतीजे पर मैं पहुँचा हूँ वह मेरी भूल या मेरे मन की अस्वस्थ अवस्था का परिणाम है, उलटे कहा कि मैंने जो सोचा है, ठीक ही सोचा है और मेरे विचार सबसे शक्तिमान मानवी मस्तिष्को द्वारा पहुँचे हुए नतीजो से मेल खाते है।

अपने को धोखे में रखने से कोई फ़ायदा नही है। यह सब मिथ्याहंकार है ! जो पैदा नही हुआ है वही सुखी है--भाग्यवान् है, मृत्यु जीवन से अच्छी है और आदमी को अवश्य जीवन से मुक्ति-लाभ करना चाहिए।

: ७ :

जब मुझे विज्ञान के अन्दर कोई जवाब नहीं मिला तब मैंने जीवन मे उसकी खोज शुरू की और इर्द-गिर्द के लोगों मे ही उसे पा लेने की उम्मीद की। मैंने इस बात पर ध्यान देना शुरू किया कि मेरे आस-पास के मेरे ही जैसे लोग कैसे ज़िन्दगी बिताते है और उस सवाल की निस्बत उनका क्या रुख़ है जिसने मुझे निराशा के भँवर मे लाकर छोड़ दिया है।

जो लोग मेरी जैसी स्थिति मे थे यानी जिनकी शिक्षा-दीक्षा और जीवन-प्रणाली मेरे समान थी उनके बीच मैंने यह जवाब पाया।

मैंने पता लगाया कि मेरे वर्ग के आदमी जिस भयानक स्थिति मे थे उससे निकलने के लिए चार रास्ते हैं

पहला अज्ञान का रास्ता है यानी इस बात को न जानना, न समझना कि ज़िन्दगी एक बुराई और फिजूल की चीज़ है। इस तरह के लोग—खास-तौर पर औरतें, या बिल्कुल नवजवान या बिल्कुल सुस्त और कुन्दज़ेहन आदमी—अभी तक ज़िन्दगी के उस सवाल को समझ ही नहीं पाये है जो शापनहावर, सुलेमान और बुद्ध के सामने आया था। वे न तो उस अजगर को ही देख रहे हैं जो उनकी बाट जोह रहा है और न उस टहनी काटने वाले चूहे को ही देख रहे है जिनसे वे लटके हुए हैं। वे सिर्फ शहद की बूँदें चाटते हैं। पर शहद की बूँदे भी वे थोडे ही समय तक चाट पाते हैं · कोई चीज़ उनका ध्यान अजगर और चूहे की तरह ज़रूर खींचेगी और शहद चाटने का अन्त हो जायगा। ऐसे लोगों से मुझे कुछ सीखना नहीं है—आदमी जिस बात को जानता है उसकी जानकारी की ओर से आँख कैसे मूँद सकता है?

इससे छूटने का दूसरा मार्ग विषयासक्ति है। इसका मतलब है—

ज़िन्दगी की व्यर्थता को जानते हुए भी जो कुछ सहूलियतें मिल गयी है उनका फिलहाल उपयोग करना और अजगर एवं चूहे की परवा न करते हुए अपनी पहुँच में जितना शहद हो उसे चाटते जाना। सुलेमान ने इसी भाव को यों ज़ाहिर किया है—'तव मैंने प्रमोद का रास्ता इख़्तियार किया; क्योंकि आदमी के लिए दुनिया मे खाने, पीने और आनन्द मनाने से बढ़कर और क्या है। ईश्वर ने दुनिया मे उसे ज़िन्दगी के जितने दिन दिये है उसमें उसके श्रम के बीच अगर प्रमोद, सुख-भोग का यह क्रम चलता रहे तो फिर और क्या चाहिए।

'इसलिए आनन्द के साथ अपनी रोटी खा और उल्लसित हृदय से अपनी शराव पी।...जिस पत्नी को अपने मिथ्याहंकार की ज़िन्दगी के दिनो मे तू प्यार करता है उसके साथ सुखपूर्वक रह. . क्योंकि दुनिया में तू जो श्रम करता है उसमे तुझे अपने हिस्से में यह चीज़ मिली है। तेरे हाथो को जो कुछ करने को मिले उसे अपनी सारी ताकत से कर, क्योंकि जिस कब्र की तरफ़ तू चला जा रहा है उसमें कोई काम, कोई तरकीव, कोई ज्ञान वाकी नहीं रह जाता।'

यही वह तरीका है जिसे इख़्तियार करके हमारे ढंग के ज़्यादातर आदमी अपने लिए ज़िन्दगी को संभव बनाते हैं। अपनी परिस्थिति के कारण उनकी ज़िन्दगी में कठिनाई की जगह आराम और सुख-भोग की अधिकता होती है और अपनी नैतिक अन्धता की वजह से वे यह भूल जाते हैं कि उनकी स्थिति की यह सुविधा आकस्मिक है और सुलेमान की तरह हर आदमी को हज़ार पत्नियाँ और महल नहीं मिल सकते। वे यह भी भूल जाते है कि हर ऐसे आदमी के बदले, जिसके पास हज़ार औरतें है, हज़ार आदमी बिना औरत के ही रह जाते हैं और हर महल को बनाने में हजार आदमियो को पसीना वहाकर काम करना पड़ता है और जिस घटनाचक्र ने आज मुझे सुलेमान बना दिया है वही कल मुझे सुलेमान का दास भी बना सकता है। चूँकि इन आदमियो की कल्पनाशक्ति विल्कुल निकम्मी हो चुकी होती है इसलिए वे उन वातो को भुला सकते हैं जिनके कारण वुद्ध को शान्ति नही

मिलती थी—यानी उस बीमारी, बुढापे और मौत की अनिवार्यता को वे भूल जाते है जो आज या कल इन सब सुखो का अन्त कर देगी।

हमारे ज़माने के और हमारी तरह ज़िन्दगी बितानेवाले ज़्यादातर आदमी इसी तरह सोचते और अनुभव करते हैं। यह ठीक है कि इनमे मे कुछ लोग अपने विचारों और कल्पनाओं के निकम्मेपन को एक तत्वज्ञान के रूप मे घोषित करते हैं और उसे 'निश्चयात्मक' (पाज़िटिव) नाम देते है, पर मेरी सम्मति मे, इसके कारण वे उन लोगो के झुण्ड से अलग नहीं किये जा सकते, जो सवाल को नज़रअन्दाज़ करने के लिए, शहद चाटते हैं। मै इन आदमियों की नकल नहीं कर सकता, और उनकी जैसी कल्पना की मन्दता न होने के कारण मैं उनकी तरह इसे बनावटी तौर पर अपने अंदर पैदा भी नहीं कर सकता। मै अजगर और चूहे से अपनी आँखें हटा नही सकता, कोई चेतनाधारी मनुष्य एक बार उन्हें देख लेने के बाद ऐसा नही कर सकता।

पलायन का तीसरा रास्ता बल और शक्ति का है। इसके मानी यह है कि जब आदमी समझ ले कि जिदगी महज़ एक बुराई और निरर्थक-सी चीज़ है तब उसे नष्ट कर दे। विशेष शक्तिमान और अपने उसूल को न छोडने वाले बहुत ही थोडे लोग ऐसा करते है। उनके साथ जो मज़ाक किया गया है उसकी निरर्थता समझ लेने और जीने से मर जाना अच्छा है तथा अस्तित्व न रखना सबसे अच्छा है, यह जान लेने के बाद वे इस मूर्खतापूर्ण मजाक का ख़ात्मा कर देते हैं—क्योंकि खात्मा करने के साधन भी मौजूद है· गले के चारों ओर रस्सी का फंदा, पानी, कलेजे मे घुसेड देने के लिए छुरा, रेल पर चलने वाली गाडियॉ। हम में से जो लोग ऐसा करते है उनकी तादाद बढती ही जाती है। इनमे से ज़्यादातर अपनी ज़िन्दगी की सब से अच्छी अवधि मे, जब उनके मन की शक्ति खूब विकसित होती है और मनुष्य के मन को विकृत और पतित करनेवाली आदतें भी उनमे बहुत कम होती है, ऐसा करते हैं।

मैंने देखा कि पलायन का यही सब से अच्छा तरीका है और मैंने इसे ही इख्तियार करने की ख्वाहिश की।

एक चौथा तरीका और है, पर वह कमज़ोरी का तरीका है। इस तरीके में परिस्थिति की सच्चाई को देखते हुए भी ज़िन्दगी से चिपटे रहना है—गो आदमी पहले से ही यह जानता होता है कि इसमे से कोई चीज नहीं हाथ आनी है। इस तरह के आदमी जानते हैं कि मौत ज़िन्दगी से बेहतर है; पर चूँकि बुद्धिमत्तापूर्वक आचरण करने की जल्दी इस धोखा-धडी को खत्म करने और मार डालने की ताकत उनमे नहीं होती, वे किसी चीज़ का इन्तज़ार करते हुए मालूम पड़ते हैं। यह कमज़ोरी का पलायन है, क्योंकि जब मैं जानता हूँ कि सबसे अच्छी बात क्या है और उसे करना मेरे बस की बात है तब उस सब से अच्छी बात के आगे क्यो सिर न झुकाया जाय?... मैंने अपने को इसी वर्ग मे पाया।

इन चार तरीकों से मेरी जैसी स्थिति के आदमी भयंकर परस्पर-विरुद्धताओं से दूर भागने की कोशिश करते हैं। मैंने बड़ी कल्पना की, अपना दिमाग़ चारो तरफ़ दौड़ाया, पर इन चार तरीकों के अलावा मुझे कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखाई दिया। एक रास्ता था—जीवन मूर्खतापूर्ण, मिथ्या-हंकार और बुराई है और ज़िन्दा न रहना बेहतर है, इसे न समझने का। पर मैं इसे समझे-जाने बग़ैर न रह सका और जब एक बार मैं उसे जान-समझ चुका तब उससे आँखें कैसे बन्द कर सकता था? दूसरा रास्ता यह था—बग़ैर आगे का, भविष्य का विचार किये जैसी भी ज़िन्दगी है उसका इस्तेमाल किया जाय। मै ऐसा भी नहीं कर सकता था। शाक्यमुनि की तरह जानते हुए कि बुढापा, बीमारी और मौत का अस्तित्व है, मै सैर-शिकार को नहीं जा सकता था। मेरी कल्पना बडी प्रबल थी। मै उन क्षणिक घटनाओं मे भी .खुशी नहीं महसूस कर सकता था जो थोड़ी देर के लिए मेरे सामने सुख के टुकड़े फेंक जाती थीं। तीसरा रास्ता यह था कि इस बात को समझ लेने के बाद कि ज़िन्दगी एक बुरी और बेवकूफ़ी से भरी हुई चीज़ है, अपने को मारकर उसका ख़ात्मा कर दिया जाय। मै जीवन की व्यर्थता को समझता था फिर भी किसी वजह से अपनी हत्या मैने नहीं की। चौथा तरीका है—सुलेमान और शापेनहावर की तरह रहने का—यह जानते

हुए कि ज़िन्दगी हमारे साथ किया गया एक मज़ाक है, जीवन विताने, नहाने-धोने, खाने-पहनने, वात करने और किताबें लिखने का। मेरे लिए यह घृणाजनक और दुःखदाई था। लेकिन मैं उस स्थिति में वना रहा।

आज मै देखता हूं कि मैं जो अपनी हत्या नहीं कर सका उसका कारण एक तरह की धुधली चेतना थी कि मेरे विचार भ्रमपूर्ण हैं। मेरे तथा विद्वानो के विचारों की वह प्रणाली चाहे कितनी ही विश्वासदायक और सन्देहरहित मालूम पडी हो जिसने हमें ज़िन्दगी की व्यर्थता को स्वीकार करने पर मजबूर किया। पर इस परिणाम के औचित्य के सम्बन्ध मे मेरे अन्दर एक धुँधला सन्देह बना ही रहा।

यह सन्देह कुछ इस तरह का था मैं यानी मेरी बुद्धि ने मान लिया है कि जीवन व्यर्थ है। अगर बुद्धि से ऊँची कोई चीज़ नहीं है (और है भी नहीं, कोई चीज़ सिद्ध नहीं कर सकती कि इससे ऊँची वस्तु है), तव मेरे लिए बुद्धि ही जीवन की सृष्टि करने वाली है। अगर बुद्धि के अस्तित्त्व का लोप हो जाय तो मेरे लिए जीवन भी न रहेगा। पर बुद्धि जीवन से इन्कार कैसे कर सकती है, जव वह स्वयं जीवन की सृष्टि करनेवाली है? या इसे दूसरी तरह कहें अगर जीवन न होता तो मेरी बुद्धि का अस्तित्व भी न होता, इसलिए बुद्धि जीवन की संतान है। जीवन ही सब कुछ है। बुद्धि उसका फल है, फिर भी बुद्धि स्वयं जीवन को अस्वीकार करती है! मैंने महसूस किया कि इसमे कोई-न-कोई भ्रम या ग़लती है।

मैंने अपने तई कहा—यह ठीक है कि जीवन एक व्यर्थ की बुराई है। फिर भी मै जीता रहा हूं और अव भी जी रहा हूँ, सारी मानव-जाति जीती रही है और जी रही है। यह कैसी बात है? जव न जीना मुमकिन है तव फिर यह क्यों जीती है? क्या सिर्फ मै और शापेनहावर ही इतने अक्लमन्द है कि जीवन की व्यर्थता और बुराई को समझते है?

जीवन के मिथ्याहंकार को प्रदर्शित करनेवाला तर्क इतना कठिन नहीं है और बिल्कुल सीधे-सादे लोगो को भी अनन्तकाल से उसका परिचय रहा है, फिर भी वे जीते रहे हैं और आज भी जी रहे हैं। फिर क्या कारण

है कि वे सब जीते है और कभी जीवन के औचित्य मे संदेह करने की बात नहीं सोचते ?

ऋषियो के विवेक द्वारा समर्थित मेरे ज्ञान ने मुझे बताया है कि पृथ्वी पर रहने वाली प्रत्येक वस्तु—शरीरी और अशरीरी—अत्यन्त चतुराई के साथ एक व्यवस्था और शृङ्खला में पिरोई हुई है, केवल मेरी ही स्थिति हास्यास्पद है। और विस्तृत जन-समूह का निर्माण करनेवाले उन 'मूर्खों' को इस बात का कुछ ज्ञान नहीं है कि जगत् की प्रत्येक शरीरी और अशरीरी वस्तु में किस क्रम का विधान है। फिर भी वे जी रहे है और उनको ऐसा अनुभव होता है कि उनका जीवन बड़ी बुद्धिमत्ता और व्यवस्थापूर्वक क्रमबद्ध है!

तब मुझे यह ख़याल आया कि 'कहीं ऐसा तो नहीं है कि मै किसी वस्तु को अभी तक न जानता होऊँ ? अज्ञान ठीक इसी रूप मे अपना कार्य करता है। वह सदैव ठीक वही बात कहता है जो मै कह रहा हूँ। जब वह किसी वस्तु को नहीं जानता तब वह यह कहता है कि जो कुछ मैं नहीं जानता वह सब मूर्खतापूर्ण है। इसमे संदेह नहीं और यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सारा-का-सारा मानव-समाज ऐसा है जो जीता रहा है और आज भी इस रूप मे जी रहा है मानो उसने अपने जीवन का अर्थ समझ लिया हो, क्योंकि बिना इसे समझे वह जी नहीं सकता. किन्तु मै कहता हूँ कि यह सब जीवन निरर्थक है और मैं जी नहीं सकता।

'आत्म-हत्या द्वारा जीवन को अस्वीकार करने से हमे कोई चीज नहीं रोकती। तब अपने को मार डालो और बहस मत करो। यदि जीवन तुम्हे दुःखी करता है तो अपनी हत्या कर लो !तुम जीते हो, और फिर भी जीवन के तात्पर्य को समझ नहीं सकते तो इस जीवन का अन्त कर दो, और जीवन मे आत्म-वंचना करते तथा उन बातो को कहते और लिखते हुए न फिरो जिसे तुम स्वयं समझने मे असमर्थ हो। तुम एक अच्छे समाज में पैदा हुए हो, जिसमे लोग अपनी स्थिति से संतुष्ट हैं और जानते है कि वे क्या कर रहे है। यदि तुम इसे निरानन्द और घृणाजनक पाते हो तो इसे छोड़कर चल दो !'

हमारे जैसे लोग जो आत्म-हत्या की आवश्यकता को अनुभव करते हैं, फिर भी आत्म-हत्या करने का निश्चय नही कर पाते, अवश्य ही सबसे दुर्बल, अत्यंत असम्बद्ध और, यदि साफ-साफ कहें तो, सबसे मूर्ख हैं और उन मूर्खों की तरह अपनी मूर्खता का प्रदर्शन करते फिरते है जो एक चित्रित पापिनी के विषय मे प्रलाप करते है। हमारी बुद्धि और हमारा ज्ञान चाहे कितना ही संदेह-रहित हो; किंतु इसने हमारे जीवन का प्रयोजन समझने की शक्ति हमें नहीं दी है। किन्तु समग्र मानव-जाति जो जीवित है—कम-से-कम उनमे से करोडो की सख्या—जीवन के प्रयोजन के विषय मे संदेह नही करती।

अत्यन्त प्राचीन काल से, जब जीवन का आरम्भ हुआ अथवा जिसके बारे मे हमे कुछ भी जानकारी है, तब से जगत् में मनुष्य जी रहे है और वे जीवन की व्यर्थता के विषय मे जो तर्क है उसका ज्ञान भी रखते रहे हैं—उसी तर्क का ज्ञान जिसने मुझे जीवन की निरर्थकता का विश्वास दिला दिया है—,और फिर भी वे जीवन का कुछ अर्थ बताकर बराबर जीते रहे।

जब से मनुष्यो मे किसी प्रकार के जीवन का आरम्भ हुआ तब से ही उनको जीवन के प्रयोजन का भी पता रहा है और वे वही जीवन बिताते रहे हैं जो आज मेरे पास आया है। जो कुछ मेरे अन्दर और मेरे इर्द-गिर्द है, सब शरीरी और अशरीरी वस्तुयें, उन्ही के जीवन-ज्ञान का परिणाम हैं। विचार के जिन साधनों से मैं इस जीवन के विषय मे विचार करता और उसका तिरस्कार करता हूँ वे सब मेरे द्वारा नही, बल्कि उन्ही आदमियों द्वारा आविष्कृत हुए थे। यह भी उन्हीं की कृपा है जो मै पैदा हुआ, पढाया-लिखाया गया और इस प्रकार विकसित हुआ। उन्होंने जमीन खोद कर लोहे का पता लगाया, उन्होंने हमें जंगलों को काट कर साफ करना सिखलाया, गायों और घोडों का पालन करना उन्होंने सिखलाया, उन्होंने ही हमे बतलाया कि खेत में अन्न किस प्रकार बोना चाहिए और हम मिल-जुल कर किस प्रकार रह सकते हैं। उन्होने हमारे जीवन को संगठित किया, और मुझे सोचना और बोलना सिखलाया। और मै, उन्हीं की सन्तति,

उन्हीं द्वारा पालित-पोषित, उन्हीं द्वारा ज्ञान प्राप्त कर और उन्हीं के विचारों और शब्दों का अपने चिन्तन में उपभोग करते हुए, तर्क करता हूँ कि वे मूर्ख और निरर्थक थे ! तब मैंने अपने मन में कहा कि 'कहीं-न-कहीं अवश्य कोई ग़लती हो रही है और मैं कुछ भूल अवश्य कर रहा हूँ।' लेकिन वह ग़लती कहाँ है और क्या है इसका पता मुझे बहुत बाद में चला।

: ८ :

ये सब सन्देह, जिन्हे आज थोडे-बहुत व्यवस्थित रूप में प्रकट करने मे समर्थ हुआ हूँ, उस समय मै व्यक्त नहीं कर सकता था। उस समय तो मै इतना ही महसूस करता था कि जीवन के मिथ्या अहंकार के सम्बन्ध में मेरे निष्कर्ष तर्क की दृष्टि से चाहे कितने ही अनिवार्य जान पडते हो और संसार के महान् विचारकों द्वारा उनको चाहे कितना ही समर्थन प्राप्त हुआ हो, किन्तु उनमे कोई-न-कोई ग़लती अवश्य है। यह ग़लती स्वयं उस तर्क-प्रणाली मे है अथवा इस प्रश्न के वक्तव्य मे है, यह मैं नहीं जानता था। मैं इतना ही महसूस करता था कि जिस नतीजे पर मैं पहुँचा हूँ वह तर्क की दृष्टि से विश्वसनीय है; किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। ये सब परिणाम वा निष्कर्ष मुझे इस रूप मे विश्वास नहीं दिला सके कि मै अपनी तार्किकताके अनुसार आचरण भी कर सकूँ अर्थात् अपनी हत्या कर लूँ। और यदि बिना अपनी हत्या किये मै कहता कि बुद्धि से ही मैं इस स्थान पर पहुँचा हूँ तो यह एक झूठी बात होती। बुद्धि और तर्क अपना काम कर रहे थे, लेकिन कोई और चीज भी अन्दर-ही-अन्दर क्रियाशील थी, इससे हम जीवन की चेतना के नाम से पुकार सकते हैं। मेरे अन्दर एक शक्ति काम कर रही थी जो मेरा ध्यान इस तरफ खींचने को मुझे विवश करती थी; और यही वह शक्ति थी जिसने मुझे मेरी निराशापूर्ण स्थिति से उबारा औरएक बिल्कुल ही दूसरी दिशा में मेरे मन को नियोजित किया। इस शक्ति ने मुझे इस तथ्य की ओर ध्यान देने को मजबूर किया कि मै और मेरे जैसे कुछ थोडे और आदमियो तक ही मानव-जाति का अन्त नहीं है और अभी तक मै मानव-जाति के जीवन का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका हूँ।

अपने बराबरी के लोगो की संकुचित परिधि की ओर जब मैने ध्यान दिया तो देखा कि उनमे ऐसे ही लोग हैं जिन्होंने या तो इस सवाल को समझा ही नहीं है या यदि समझा भी है तो उसे जीवन के नशे मे डुबा दिया है, अथवा समझ कर अपने जीवन का अन्त कर दिया है, या इसे समझा तो है, किन्तु अपनी दुर्बलता के कारण वे अपने निराशापूर्ण जीवन के दिन बिता रहे हैं। इसके सिवा मुझे दूसरे लोग दिखलाई न पड़ते थे। मुझे ऐसा मालूम पड़ता था कि धनवान, शिक्षित और निठल्ले लोगों के उस संकुचित समाज तक—जिसमें मैं शामिल था—ही सारी मनुष्य-जाति का खात्मा हो जाता है, और वे करोड़ों आदमी जो इस छोटे समाज के बाहर रहकर जीवन बिताते रहे हैं और आज भी बिता रहे हैं एक प्रकार के पशु हैं—वे असली आदमी नहीं हैं।

यद्यपि इस समय यह बात बिल्कुल असंगत और अविश्वस्नीय रूप से अचिन्त्य मालूम होती है कि मैं जीवन के विषय में तर्क करते हुए भी अपने चारो ओर के मानव-जाति के सम्पूर्ण जीवन को उस समय भूल जाता था और यह समझने की भूल कर बैठता था कि मेरा तथा सुलेमान और शापन-हावर का जीवन ही सच्चा जीवन है और करोड़ों मनुष्यों का जीवन हमारे ध्यान देने लायक नहीं—पर उस समय मेरे साथ यही बात थी। अपनी बुद्धि के अहंकार और आत्म-वंचना में मुझे यह बात असंदिग्ध मालूम पड़ती थी कि मैंने एवं सुलेमान और शापनहावर ने जीवन के इस सवाल को ऐसे सच्चे और उचित रूप में रक्खा है कि उसके अतिरिक्त और कुछ भी सम्भव नहीं है। यह बात मुझे इतनी संदिग्ध प्रतीत होती थी कि अपने चारो ओर फैले हुए उन करोड़ो आदमियों के जीवन के विषय में कभी मेरे मन मे एक बार भी यह प्रश्न नहीं उत्पन्न हुआ कि 'जो कोटि-कोटि व्यक्ति दुनिया में जीते रहे हैं और जी रहे हैं उन्होने अपने जीवन का क्या प्रयोजन समझा था अथवा समझा है ?'

मै बहुत दिनो तक पागलपन की इस अवस्था मे रहा जो हम अत्यन्त उदार और सुशिक्षित आदमियो के औसत स्वभाव को प्रकट करती है।

किन्तु सच्चे श्रमिकों के लिए मेरे हृदय में जो सद्भाव है उसके कारण मुझे उनकी ओर ध्यान देने और यह समझने के लिए विवश होना पड़ा कि वे उतने मूर्ख नहीं है जितना हमने मान रक्खा है। इस वृत्ति के कारण अथवा अपने विश्वास की इस सच्चाई के कारण कि अपनी हत्या कर देने के अतिरिक्त मैं और कुछ जानने में असमर्थ हूँ, मैने आन्तरिक प्रेरणावश यह अनुभव किया कि यदि मै जीना और जीवन के प्रयोजन को समझना चाहूँ तो मुझे उन लोगों मे इसकी खोज नहीं करनी चाहिए जिन्होंने इसे खो दिया है अथवा जो अपनी हत्या करना चाहते हैं, बल्कि भूत और वर्तमान काल के उन करोड़ों आदमियों मे उसकी खोज करनी चाहिए जो जीवन का निर्माण करते हैं और जो न केवल अपनी ज़िन्दगी का बोझा उठाते है, बल्कि हमारे जीवन का बोझ भी अपने कन्धो पर ले लेते हैं। तब मैंने उन बहु-संख्यक सरल, अशिक्षित और गरीब लोगो के जीवन पर विचार करना आरम्भ किया जो जीवन व्यतीत कर चुके हैं अथवा आज भी जी रहे हैं। मैंने एक बिल्कुल ही नई बात देखी। मैंने देखा कि थोडे से अपवादों को छोडकर जी चुके अथवा जी रहे ये करोड़ो आदमी मेरी पूर्व-निश्चित श्रेणियों मे नहीं बॉटे जा सकते। मैं उन्हें न तो उन आदमियों की श्रेणी मे रख सकता हूँ जो सवाल को नहीं समझते, क्योंकि वे ख़ुद इसको बयान करते है और असाधारण स्पष्टता के साथ इसका जवाब देते हैं। मै उन्हें विषयासक्त भी नहीं मान सकता, क्योंकि उनकी ज़िन्दगी मे सुख-भोग की बनिस्बत दु ख-दर्द ही ज़्यादा है। इनकी गिनती मै उन लोगों मे तो कर ही कैसे सकता हूँ जो अविवेकपूर्वक अपनी अर्थहीन ज़िन्दगी का भार ढो रहे हैं, क्योंकि अपने जीवन के हरएक काम, और खुद मौत, की व्याख्या भी उनके ज़रिये हो रही है। आत्म-हत्या को वे सब से बड़ी बुराई या पाप समझते हैं। तब मुझ पर यह प्रकट हुआ कि सारी मानव-जाति को जीवन के अर्थ या प्रयोजन की जानकारी थी, पर मैं उस जानकारी को मंजूर न करता था और उससे नफ़रत करता था। मुझे यह भी मालूम पड़ा कि तार्किक ज्ञान जीवन का अर्थ बताने मे असमर्थ है, वह जीवन को बहिष्कृत करता है .

उधर करोड़ों आदमी—सारा मनुष्य-समाज—जीवन का जो अर्थ लगाते हैं वह एक प्रकार के तिरस्कृत मिथ्या ज्ञान पर आश्रित है।

पण्डितों और विद्वानों द्वारा पेश किया जाने वाला तर्कपूर्ण या बुद्धि-सम्मत ज्ञान जीवन के अर्थ वा प्रयोजन से इन्कार करता है, परन्तु मनुष्यों की बहुत बड़ी संख्या, करीव-करीव सारी मनुष्य जाति, इस अर्थ को अतार्किक ज्ञान से प्राप्त करती है। और यह अतार्किक ज्ञान ही श्रद्धा है—वह वस्तु जिसे मै अस्वीकार किये विना रह नहीं सकता था। यह ईश्वर है, यह त्रिमूर्ति मे एक है, यह छ दिनो मे सृष्टि करने के समान है। पर इन सब बातों को मै उस वक्त तक स्वीकार नहीं कर सकता जवतक मेरी बुद्धि सही-सलामत है।

मेरी स्थिति वड़ी भयंकर थी। मै जान चुका था कि तार्किक ज्ञान के रास्ते पर चलकर तो मै जीवन की अस्वीकृति के सिवाय कुछ और प्राप्त नहीं कर सकता; और उधर श्रद्धा के पक्ष मे बुद्धि की अस्वीकृति के सिवा दूसरी कोई बात नहीं थी जो मेरे लिए जीवन की अस्वीकृति की अपेक्षा कहीं असम्भव थी। तार्किक ज्ञान से तो यह प्रकट होता था कि जीवन एक बुराई है, और लोग इसे जानते है कि न जीना ख़ुद उन्हीं पर निर्भर है; फिर भी उन्होंने अपनी ज़िन्दगी के दिन पूरे किये और आज भी वे जी रहे है। ख़ुद मैं जी रहा हूँ, यद्यपि बहुत दिनों से मुझे इस बात का ज्ञान है कि जीवन अर्थहीन और एक दूषण है। श्रद्धा द्वारा यह प्रकट होता है कि जीवन के प्रयोजन को समझने के लिए मुझे अपनी बुद्धि का तिरस्कार करना चाहिए—उसी वस्तु का जिसके लिये जीवन का अर्थ जानने की ज़रूरत है।

: ५ :

इस प्रकार जो संघर्ष और परस्पर-विरोधी स्थिति पैदा हुई उससे निकलने के दो मार्ग थे। या तो यह कि जिसे मै बुद्धि कहता हूँ वह इतनी तर्क-सगत नहीं है जितनी मैं माने बैठा हूँ अथवा यह कि जिसे मै अबौद्धिक और अतार्किक समझता हूँ वह इतना अबौद्धिक और तर्क-विरोधी नहीं है जितना मै समझता हूँ। तब मै अपने तार्किक ज्ञान की तर्क-प्रणाली पर विचार और उसकी छान-बीन करने लगा।

अपने बौद्धिक ज्ञान की तर्क-प्रणाली पर विचार करने पर मुझे वह बिल्कुल ठीक मालूम हुई। यह निष्कर्ष अनिवार्य था कि जीवन शून्यवत है, किन्तु मुझे एक भूल दिखलाई पडी। भूल यह थी कि मेरा तर्क उस सवाल के अनुरूप नहीं था जो मैने पेश किया था। प्रश्न था—'मै क्यो जीऊं अर्थात् मेरे इस स्वप्नवत् क्षणिक जीवन से क्या वास्तविक और स्थायी परिणाम निकलेगा, इस असीम जगत् मे मेरे सीमित अस्तित्व का प्रयोजन क्या है? इसी प्रश्न का जवाब देने के लिए मैने जीवन का अध्ययन किया था।

जीवन के सब संभव प्रश्नो के हल मुझे सन्तुष्ट न कर सके; क्योकि मेरा सवाल यद्यपि यों देखने मे सीधा-सादा था, परन्तु इसमे सीमित वस्तु को असीम के रूप मे और असीम को सीमित वस्तु के रूप में समझने की मॉग भी शामिल थी।

मैंने पूछा—'काल, कारण और अवकाश के बाहर मेरे जीवन का क्या अर्थ है?' और मैने इस प्रश्न का यो उत्तर दिया—'काल, कारण और अवकाश के अन्दर मेरे जीवन का क्या अर्थ है?' बहुत सोच-विचार के बाद मै यही उत्तर दे सका कि कुछ नहीं।

अपने तर्कों मे मैं बराबर सीमित की सीमित के साथ और असीम की

असीम के साथ तुलना करता रहा। इसके सिवा और मैं कर ही क्या सकता था? इसी तर्क के कारण मैं इस अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुँचा—शक्ति शक्ति है, पदार्थ पदार्थ है, संकल्प संकल्प है, असीम असीम है, शून्य शून्य है—इससे ज्यादा और किसी परिणाम पर पहुँचना संभव न था।

यह बात कुछ वैसी ही थी जैसी गणित के क्षेत्र में उस समय होती है जब हम किसी समीकरण को हल करने का विचार करते हुए यह देखते हैं कि हम समान संख्याओं को ही हल कर रहे हैं। यह तर्क-प्रणाली तो ठीक है; लेकिन उत्तर में इसका परिणाम यह निकलता है कि 'क' 'क' के बराबर है या 'ख' 'ख' के बराबर है या 'ग' 'ग' के बराबर है। अपने जीवन के प्रयोजन वाले प्रश्न के विषय में तर्क करते समय भी मेरे साथ यही बात हुई। सब प्रकार के विज्ञानों द्वारा इस प्रश्न का एक ही उत्तर मिला।

और सच तो यह है कि शुद्ध वैज्ञानिक ज्ञान (वह ज्ञान जो डिकार्टे की भाँति प्रत्येक वस्तु के विषय में पूर्ण संदेह के साथ शुरू होता है) श्रद्धा द्वारा स्वीकृत सब प्रकार के ज्ञान को अस्वीकार करता है और प्रत्येक वस्तु का बुद्धि, तर्क और अनुभव के नियमों के आधार पर नवीन रूप से निर्माण करता है, और जीवन के प्रश्न के विषय में उसके अलावा और कोई जवाब नहीं दे सकता जो मैं पहले ही प्राप्त कर चुका था—यानी एक अनिश्चित उत्तर। शुरू-शुरू में तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था कि विज्ञान ने मुझे एक निश्चयात्मक उत्तर दिया है—वह उत्तर जो शापेनहावर ने दिया था यानी जीवन का कोई अर्थ नहीं है और यह एक बुराई है। किन्तु इस विषय की भलीभाँति परीक्षा करने पर मैंने देखा कि यह उत्तर निश्चयात्मक नहीं है, केवल मेरी अनुभूति ने उसे इस रूप में प्रकट किया है। ठीक तौर से उसे व्यक्त किया जाय—जैसा कि ब्राह्मणों, सुलेमान और शापनहावर ने व्यक्त किया है—तो जवाब अनिश्चित अथवा एकसा मिलता है—वही 'क' बराबर 'क' अथवा जीवन कुछ नहीं है। इस प्रकार यह दार्शनिक ज्ञान किसी वस्तु को अस्वीकार तो नहीं करता; किन्तु यह उत्तर देता है कि यह प्रश्न हल करना उसकी शक्ति के बाहर है और उसके लिए हल अनिश्चित ही रहेगा।

इसे समझ चुकने के बाद मैंने यह देखा कि तार्किक ज्ञान के द्वारा अपने प्रश्न का कोई उत्तर खोज निकालना संभव नहीं है और तार्किक ज्ञान के द्वारा मिलने वाला उत्तर केवल इस बात का सूचक है कि इस प्रश्न का उत्तर प्रश्न के एक भिन्न वक्तव्य के द्वारा और तभी प्राप्त हो सकता है जब उसमे असीम के साथ सीमित के सम्बन्ध को शामिल कर लिया जाय। और मैंने समझा कि श्रद्धा एवं विश्वास द्वारा मिलने वाला उत्तर चाहे कितना ही तर्क-हीन और विकृत हो, किन्तु उसमे ससीम के साथ असीम के सम्बन्ध की भूमिका होती है जिसके बिना कोई हल संभव नहीं है।

मैंने जिस रूप मे भी इस सवाल को रक्खा, यह असीम और ससीम के बीच का सम्बन्ध उत्तर मे अवश्य प्रतिध्वनित हुआ। मुझे किस प्रकार रहना चाहिए ? ईश्वरीय नियमों के अनुसार। मेरे जीवन से क्या वास्तविक परिणाम निकलेगा ? अनन्त कष्ट वा अनन्त आनन्द। जीवन मे जीवन का वह कौन सा अर्थ है जिसे मृत्यु नष्ट नहीं करती ?—अनन्त प्रभु के साथ सम्मिलन : स्वर्ग।।

इस प्रकार उस तार्किक या बौद्धिक ज्ञान के अलावा, जिस तक मै ज्ञान की इति समझता था, अनिवार्य रूप से मुझे एक दूसरी ही बात स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा कि समस्त जीवित मानवता के पास एक दूसरे प्रकार का ज्ञान—अतार्किक ज्ञान—भी है जिसे श्रद्धा या निष्ठा कहते है और जो मनुष्य का जीना सम्भव करती है। अब भी यह श्रद्धा वा निष्ठा मेरे लिए उसी प्रकार अबौद्धिक या अतार्किक है जैसे वह पहले प्रतीत होती थी, पर अब मै यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि सिर्फ इसी के ज़रिये मनुष्य-जाति को ज़िन्दगी के इस सवाल का जवाब मिल सकता है और इसलिए इसी के कारण ज़िन्दगी सम्भव है। ज्ञान ने हमे यह स्वीकार करने को विवश किया था कि जीवन अर्थहीन है। उसकी वजह से मेरी ज़िन्दगी मे एक रुकावट पैदा हो गयी थी और मैं अपना अन्त कर देना चाहता था। पर इसी बीच मैंने अपने चारो तरफ फैली मनुष्य-जाति पर निगाह डाली और देखा कि लोग जीते हैं और इसका एलान भी करते हैं कि उनको जीवन का अर्थ मालूम है। मैंने अपनी तरफ़ देखा। मैंने तभी तक अपने अन्दर जीवन-प्रवाह

का अनुभव किया था जबतक मुझे जिन्दगी के किसी प्रयोजन का ज्ञान था। इस तरह न सिर्फ दूसरों के लिए, बल्कि खुद मेरे लिए भी श्रद्धा ने जीवन को सार्थक कर दिया और मेरे लिये जीना सम्भव हुआ।

जब मैंने दूसरे देशों के लोगों, मेरे समकालिकों और उनके पूर्वजों, पर ध्यान दिया तो वहाँ भी मुझे यही बात दिखाई पडी। जब से पृथ्वी पर मनुष्य का जन्म हुआ तबसे जहाँ-कहीं भी जीवन है मनुष्य इस श्रद्धा के कारण ही जी सका है और इस श्रद्धा की प्रधान रूप-रेखा सब जगह मिलती है और सदा एक रहती है।

श्रद्धा चाहे कुछ हो, वह चाहे जो उत्तर देती हो और चाहे जिन्हें वह उत्तर दे, पर उसका प्रत्येक उत्तर मनुष्य के सीमित अस्तित्व को एक असीम तात्पर्य प्रदान करता है—वह तात्पर्य जिसका कष्ट, विपत्ति और मृत्यु से अन्त नहीं होता। इसका मतलब यह है कि सिर्फ श्रद्धा मे ही हम जीवन के लिए एक अर्थ और एक सम्भावना प्राप्त कर सकते है। तब, यह श्रद्धा क्या है? विचार करके मैंने समझा कि श्रद्धा या निष्ठा 'अदृश्य वस्तुओं का प्रमाण' मात्र नहीं है और सिर्फ दैवी प्रेरणा ही नहीं है (इससे श्रद्धा का एक निर्देश-मात्र होता है), न सिर्फ ईश्वर के साथ मनुष्य का सम्बन्ध है (पहले आदमी को श्रद्धा की और फिर ईश्वर की परिभाषा करनी पड़ती है, ईश्वर के द्वारा या उसके साधन से श्रद्धा की नहीं), यह सिर्फ उन बातों को मान लेना ही नहीं है जो बताई गई हो (यद्यपि श्रद्धा या निष्ठा का आम तौर पर यही मतलब लिया जाता है), श्रद्धा तो मानव-जीवन के प्रयोजन वा तात्पर्य का वह ज्ञान है जिसके फल-स्वरूप मनुष्य अपना नाश नहीं करता; बल्कि जीता है। श्रद्धा जीवन का बल है। अगर कोई आदमी जीता है तो वह किसी-न-किसी वस्तु में श्रद्धा या विश्वास रखता है। यदि उसका विश्वास नहीं है कि किसी चीज़ के लिए उसे जीना चाहिए तो वह जी न सकेगा। यदि वह ससीम की मिथ्या प्रकृति को नहीं देख और पहचान पाता तो वह ससीम में विश्वास करता है, यदि वह ससीम की मिथ्या प्रकृति को समझ लेता है तो फिर उसके लिये असीम मे विश्वास रखना जरूरी है। बिना श्रद्धा या विश्वास के तो वह जी ही नहीं सकता।

तब मैने अपने इतने दिनों तक के सारे मानसिक श्रम का स्मरण किया और भय से कॉप उठा। अब मेरे सामने यह बात साफ हो गयी थी कि अगर आदमी को जीना है तो उसे या तो असीम की तरफ से ऑखें मूॅद लेनी पड़ेंगी या फिर जीवन के प्रयोजन की ऐसी व्याख्या स्वीकार करनी पडेगी जिससे ससीम और असीम के बीच सम्बन्ध स्थापित हो सके। ऐसी व्याख्या पहले भी मेरे सामने थी, परन्तु जबतक मैं ससीम मे विश्वास रखता रहा तबतक मुझे इस व्याख्या या स्पष्टीकरण की आवश्यकता ही न थी, और मैं तर्क की कसौटी पर कसकर उसकी परख करने लगा। तर्क के प्रकाश मे मेरी पहले की सम्पूर्ण व्याख्या टुकडे-टुकडे हो गयी। पर एक वक्त ऐसा आया कि ससीम मे से मेरा विश्वास उठ गया। तब मैं जो कुछ जानता था उसके सहारे एक बौद्धिक आधार का निर्माण करने लगा—एक ऐसी व्याख्या या स्पष्टीकरण की खोज मे लगा जो जीवन को एक अर्थ, एक तात्पर्य प्रदान कर सके; लेकिन मैं कुछ भी बना न पाया। दुनिया के सर्वोच्च मस्तिष्कों की तरह मैं भी इसी नतीजे पर पहुॅचा कि 'क' 'क' के बराबर है। मुझे इन नतीजे पर बड़ा ताज्जुब हुआ, यद्यपि इसके सिवा दूसरा कोई नतीजा निकल ही न सकता था।

जब मैने प्रयोगात्मक विज्ञानो मे जीवन के सवाल का जवाब ढूॅढना शुरू किया तब मै कर क्या रहा था? मै जानना चाहता था कि मैं क्यो जीता हूॅ, और इसके लिए मैने उन सब चीजो का अध्ययन किया जो मेरे बाहर हैं। इसमे शक नहीं कि मैने बहुत सी बातें सीखीं, पर जिस चीज़ की मुझे ज़रूरत थी, वह न मिली।

जब मैंने दार्शनिक विज्ञानो मे जीवन के सवाल का जवाब ढूॅढा तब मैं क्या कर रहा था? मैं उन लोगो के विचारो का अध्ययन कर रहा था जिन्होंने अपने को मेरी ही स्थिति मे पाया था और जो इस सवाल का—'मैं क्यो जीता हूॅ?'— कोई जवाब न पा सके थे। इस खोज मे मैं उससे ज्यादा कुछ न जान सका जो मैं खुद जानता था—यानी यह बात कि कुछ भी जाना नहीं जा सकता।

मै क्या हूँ ? अनन्त का एक अंश। इन थोड़े शब्दो में सारी समस्या निहित है।

क्या यह मुमकिन है कि मानवता ने अपने तईं यह सवाल करना सिर्फ कल शुरू किया है ? क्या मुझसे पहले किसी ने इस सवाल को हल करने की कोशिश ही नहीं की—यह सवाल जो इतना सीधा है और हरएक बुद्धिमान बच्चे की ज़बान पर उठता है ?

निस्सन्देह यह सवाल उस ज़माने से पूछा जाता रहा है जब से इंसान की शुरुआत हुई। और इंसान की शुरुआत से ही इस सवाल के हल के बारे मे यह बात भी उतनी ही साफ़ रही है कि ससीम से ससीम और असीम से असीम की तुलना इस काम के लिए अपर्याप्त है। इसी तरह से मनुष्य के आरंभ काल से ससीम और असीम के बीच के सम्बन्ध की खोज लोग करते रहे है और उसे उन्होने व्यक्त भी किया है।

इन सब धारणाओं को जिनमे ससीम का मेल असीम के साथ बैठाया गया है और जीवन के प्रयोजन की प्राप्ति की गई है, यानी ईश्वर की धारणा, सकल्प शक्ति की धारणा, पुण्य की धारणा, हम तर्क की कसौटी पर परखते है। और ये सब धारणाये तर्क एवं बुद्धि की टीका व आलोचना का सामना करने में अक्षम रहती है।

अगर यह बात इतनी भयंकर न होती तो जिस अहंकार और आत्मतुष्टि के साथ हम बच्चों की तरह घडी के पुर्जे-पुर्जे अलग कर देने और स्प्रिंग या कमानी को निकाल कर उसका खिलौना बना लेने के बाद इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि घडी चल क्यो नहीं रही है, वह अत्यन्त असगत और भद्दी मालूम पड़ती।

ससीम और असीम के बीच की परस्पर-विपरीतता का हल, और जिन्दगी के सवाल का ऐसा जवाब, जो उसका जीना सम्भव कर सके, आवश्यक और बहुमूल्य है। और यही एक हल है जिसे हम हर जगह, हर वक्त और सब तरह के लोगों मे पा सकते है : यह हल, जो मानव जीवन के आदिम युग से चला आ रहा है; यह हल, जो इतना कठिन है

कि हम इसके जैसा दूसरा कोई हल निर्माण करने मे असमर्थ हैं।—और इस हल को हम बड़े हलकेपन के साथ खत्म कर देते है, इसलिए कि फिर वही सवाल खड़ा कर सकें जो हरएक के लिए स्वाभाविक है और जिसका हमारे पास कोई जवाब नहीं है।

अनन्त ईश्वर, आत्मा के दैवत्व, ईश्वर से मानवीय बातो का सम्बन्ध, आत्मा के ऐक्य और अस्तित्व, नैतिक पाप-पुण्य की मानवीय धारणा—ये सब ऐसी धारणायें है जो मानवीय विचारो या चिन्तन की प्रच्छन्न असीमता मे निर्मित होती हैं,—ये वे धारणायें है जिनके बिना न जीवन और न मेरा अस्तित्व सम्भव है। फिर भी सम्पूर्ण मानव-जाति के उस सारे श्रम का तिरस्कार करके मै उसे नये सिरे से और अपने मनमाने ढंग पर बनाना चाहता था।

यह ठीक है कि उस वक्त मै इस तरह सोचता नहीं था, पर इन विचारो के अंकुर तो मेरे अन्दर आ ही चुके थे। सब से पहले तो मैंने यह समझा कि शापनहावर और सुलेमान का साथ देने की मेरी स्थिति मूर्खतापूर्ण है हम जानते और देखते हैं कि जीवन बुराई है—बुरा है फिर भी ज़िन्दगी की गाड़ी चलाते जाते है। यह स्पष्टत मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि अगर जीवन निरर्थक वा निष्प्रयोजन है और हम सिर्फ सार्थकता और औचित्य के भक्त है तो हमें जीवन का अन्त कर देना चाहिए तब कोई इसे चुनौती देनेवाला न होगा। दूसरी बात मैंने यह अनुभव की कि हमारे सारे तर्क धुरी और दाँते से अलग हो जानेवाले पहिये की भाँति एक भ्रमपूर्ण वृत्त मे ही घूम रहे हैं। चाहे हम कितना ही और कैसी भी अच्छी तरह से तर्क करें, हमे उस सवाल का जवाब नहीं मिल सकता। वहाँ तो सदा 'क' 'क' के बराबर ही रहेगा, इसलिए सम्भवत हमारा यह मार्ग ग़लत है। तीसरी बात जो हमारी समझ मे आने लगी, यह थी कि श्रद्धा एवं निष्ठा ने इस सवाल के जो उत्तर दिये हैं उनमे गम्भीरतम मानव ज्ञान एवं विवेक सन्निहित है और यह कि मुझे तर्क के नाम पर इनको इन्कार करने का कोई अधिकार नहीं था, और वे ही ऐसे उत्तर हैं जो ज़िन्दगी के सवाल का जवाब दे पाते है।

: १० :

मैंने इसे समझ तो लिया, पर इससे मेरी स्थिति कुछ ज़्यादा अच्छी नहीं हुई। अब मैं ऐसे हरएक विश्वास को स्वीकार कर लेने को तैयार था जिसमे बुद्धि या तर्क का सीधा तिरस्कार न होता हो—क्योंकि वैसा होने पर तो वह असत्य हो जाता है। मैंने किताबो के सहारे बौद्ध-धर्म और इस्लाम का अध्ययन किया, सबसे ज़्यादा मैंने किताबों के जरिये और अपने इर्द-गिर्द के लोगो से ईसाई-धर्म का अध्ययन किया।

स्वभावत पहले मै अपनी मण्डली के कट्टरमतावलम्बियो यानी उन लोगों की तरफ़ झुका जो विद्वान् माने जाते थे। इसके साथ ही मैंने गिर्जो के धर्मशास्त्रवेत्ताओं, पादरियो तथा इवेंजेलिकलों (जो ईसा द्वारा विश्व के मुक्ति-दान के सिद्धान्त मे विश्वास रखते है) की तरफ़ भी ध्यान दिया। मैंने इन आस्तिको से उनके विश्वासों के बारे मे सवाल किये और यह भी पूछा कि वे जीवन के प्रयोजन का क्या मतलब समझते हैं।

पर गो कि मैने उनको हर तरह की छूट दी और हर तरह से संघर्ष या विवाद बचाने की कोशिश की फिर भी मैं इन लोगो के धर्म वा विश्वास को स्वीकार न कर सका। मैंने देखा कि वे जिन बातो मे विश्वास करते हैं या जिन्हें अपना धर्म बताते हैं उनके सहारे जीवन का तात्पर्य स्पष्ट होने की जगह उलटा धुँधला हो जाता है। और वे खुद अपने विश्वासो से कुछ इसलिए नहीं चिपके हुए हैं कि जीवन के उस सवाल का जवाब दे सकें जिसके कारण मैं श्रद्धा वा निष्ठा तक पहुँचा, बल्कि ऐसे कुछ दूसरे ही उद्देश्यो के कारण उनको ग्रहण किये हुए है जो मेरे लिए अस्वाभाविक या प्रतिकूल है।

मुझे याद है कि इन लोगो के संसर्ग में बार-बार आशान्वित होने के बाद

मुझे भय होने लगा कि कहीं मैं फिर निराशा की अपनी पूर्ववर्त्ती स्थिति में न गिर जाऊँ।

वे लोग जितना ही ज़्यादा, या जितनी ही पूर्णता के साथ, अपने सिद्धान्त मुझे समझाते, उतनी ही स्पष्टता के साथ मुझे उनकी ग़लतियाँ नज़र आतीं। मैं अनुभव करने लगा कि उनके विश्वासों में जीवन के प्रयोजन की व्याख्या की खोज करना व्यर्थ है।

यद्यपि वे अपने सिद्धान्तों या मान्यताओ मे ईसाई-धर्म के सत्यों के साथ बहुतेरी अनावश्यक और अनुचित बातें मिला देते थे, पर इसके कारण मेरे मन मे उनके प्रति विरोध या खीझ नहीं पैदा होती थी। उनकी तरफ़ से मन उचटता और भागता इसलिए था कि इन लोगों की ज़िन्दगी भी मेरी ही-तरह थी। फ़र्क सिर्फ़ इतना था कि वे अपनी शिक्षाओं और उपदेशों मे जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते थे, उनका दर्शन उनके जीवन में नहीं होता था। मैंने साफ़-साफ़ अनुभव किया कि वे अपने को धोखा दे रहे हैं और मेरी तरह ही वे जीवन का इससे ज़्यादा कुछ तात्पर्य नही समझते कि जबतक ज़िन्दगी है तबतक जिओ और जो कुछ मिलता जाय लेते चलो। अगर उनको जीवन के ऐसे प्रयोजन या अर्थ का ज्ञान होता जो क्षति, दुःख और मृत्यु के भय को नष्ट कर देता है तो फिर वे इन चीज़ों से इतने डरते न होते। पर मेरी मंडली के ये आस्तिक, ठीक मेरी ही तरह, वैभव और बहुतायत के बीच रहते हुए भी इन सुविधाओं को और ज्यादा बढाने और अपने लिए उनको सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते थे। वे भी विपत्ति, पीडा और मृत्यु के भय से पीडित थे और मेरी तरह या हम जैसे अन्य नास्तिको की तरह ही वे अपनी वासनाओ एवं आकाक्षाओं की पूर्ति के लिए जीते थे—वे उतनी ही बुरी तरह जीवन व्यतीत करते थे जिस तरह नास्तिक करते है।

कोई तर्क मुझे उनके विश्वास की सच्चाई के बारे मे यकीन नहीं दिला सकता था। उनके आचरण या कार्य में ग़रीबी, बीमारी और मौत का वह भय न दिखाई पडता जो मेरे अन्दर मुझे दिखाई पड़ा था। तभी मैं

मानता कि वे जीवन का कुछ अर्थ समझते हैं। मुझे अपनी मंडली के आस्तिकों मे ऐसा आचरण दिखाई न पड़ा, बल्कि इसके खिलाफ़ हमारे दायरे के उन लोगों को हमने इस तरह का कार्य और आचरण करते देखा, जो ज़बर्दस्त अविश्वासी या नास्तिक थे*: आस्तिकों में कहीं वैसा आचरण दिखाई नहीं पड़ा।

तब मैंने समझा कि मैं उस श्रद्धा की खोज नहीं कर रहा हूँ जो इन लोगों के विश्वासों मे निहित है और यह कि उनका विश्वास कोई सच्चा विश्वास नहीं है, बल्कि जीवन का एक इन्द्रियासक्त आश्वासन मात्र है।

मैंने समझ लिया कि इस तरह की श्रद्धा चाहे अनुतापयुक्त सुलेमान को उसकी मृत्युशय्या पर, यदि शान्ति नहीं तो कम-से-कम कुछ, भुलावा दे सके, पर यह मनुष्य-जाति के उन ज़्यादातर आदमियों की कोई सेवा नहीं कर सकती जिनका कर्त्तव्य दूसरों की मेहनत के ऊपर आनन्द उड़ाना नहीं, बल्कि जीवन की सृष्टि करना है।

अगर सम्पूर्ण मानवता को जीने के लिए समर्थ बनाना है और अगर हम चाहते है कि वह जीवन का एक अर्थ, एक प्रयोजन समझते हुए ज़िन्दगी को कायम रक्खे तो इसके लिए इन करोड़ो आदमियों को श्रद्धा वा विश्वास का एक दूसरा ही सच्चा ज्ञान होना चाहिए। यह बात सच्ची नहीं है कि शापनहावर और सुलेमान के साथ ही मैंने भी जो अपने जीवन का अन्त नहीं किया तो कुछ उससे मुझे श्रद्धा के अस्तित्व की जानकारी हुई, श्रद्धा के अस्तित्व का विश्वास तो मुझे यह देखकर हुआ कि वे करोड़ो आदमी जीते

---

* टाल्स्टाय का यह वाक्य बड़ा महत्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने इस जमाने मे क्रांतिकारी या 'जनता की ओर लौटो' आन्दोलन का बहुत ही कम जगहों मे जिक्र किया है। इस आन्दोलन में बहुतेरे युवक-युवतियों ने अपने गृह, सम्पत्ति और जीवन तक का बलिदान किया था। टाल्स्टाय और इन क्रान्तिकारियों के विचारों में समानता थी और दोनों किसी-न-किसी रूप में मानते थे कि समाज के ऊपरी तल के लोग या उच्च वर्ग परान्नभोगी या परोपजीवी हैं और उन लोगों का ही खून चूस रहे हैं जो उनका बोझ अपने कन्धों पर उठाये हुए हैं।

रहे हैं और जी रहे है और उन्होंने ही अपनी जीवन-धारा पर हमारा और सुलेमान का बोझ उठा रक्खा है।

तब मैं दीन-हीन, सीधे-सादे और अशिक्षित आस्तिको यानी तीर्थ-यात्रियों, पुरोहितो, सम्प्रदायवादियों और किसानों के नज़दीक खिंचने लगा। ये मामूली आदमी भी उसी ईसाई-धर्म को मानते थे जिसको मानने का दावा हमारे दायरे के झूठे वा कृत्रिम आस्तिक लोग करते थे। इन आदमियों में भी मैंने देखा कि ईसाई सत्यों के साथ बहुतेरे अन्ध-विश्वासो को मिला दिया गया है, लेकिन दोनो मे फ़र्क़ यह था कि हमारे दायरे के आस्तिको के लिए तो ये अन्ध-विश्वास सर्वथा अनावश्यक थे और वे उनके जीवन से मेल न खाते थे—वे एक तरह की विषयाशक्ति के झुकाव के द्योतक थे, पर मेहनत-मजूरी करनेवाले मामूली लोगो के बीच प्रचलित अन्ध-विश्वास उनके जीवन के अनुरूप थे और उनका उनके जीवन से कुछ ऐसा मेल बैठता था कि उन अन्ध-विश्वासो के बिना उनके जीवन की कल्पना ही न की जा सकती थी—वे उनके जीवन की एक आवश्यक स्थिति—एक जरूरी शर्त थे। हमारे दायरे के आस्तिको का सारा जीवन उनके विश्वासों के प्रतिकूल था; पर मेहनत-मजूरी करनेवाले आस्तिकों की सारी ज़िन्दगी जीवन के उस अर्थ को दृढ और पुष्ट करती थी जो वे श्रद्धा से प्राप्त करते थे। इसलिए मैं इन मामूली लोगो के जीवन और विश्वास पर अच्छी तरह ध्यान देने लगा और जितना ही मै इस पर विचार करता, उतना ही मेरा विश्वास पक्का होता जाता था कि उनके पास सच्ची श्रद्धा है—ऐसी श्रद्धा जिसकी उनको ज़रूरत है और जो उनके जीवन को सार्थक करती और उनका जीना सम्भव बनाती है। हमारे दायरे मे जहाॅ श्रद्धा-रहित जीवन सम्भव है और हज़ार मे मुश्किल से एक आदमी अपने को आस्तिक कहता है, तहाॅ उनमे मुश्किल से हज़ार मे एक नास्तिक मिलेगा। हमने अपने दायरे मे देखा था कि लोगों का सारा जीवन बेकारी, सुस्ती, राग-रंग और असन्तोष मे बीतता है, पर इसके ख़िलाफ़ इन मामूली आदमियों मे मैंने यह देखा कि उनका जीवन घोर श्रम मे बीतता है, फिर भी वे अपनी ज़िन्दगी से सन्तुष्ट हैं। हमारे

दायरे के लोग जब अभाव या दु ख पड़ने पर किस्मत का विरोध करते और उसे कोसते हैं तब उनके ढग के खिलाफ़ ये लोग बग़ैर किसी परेशानी या विरोध के इस शात एवं दृढ विश्वास के साथ बीमारी और दु ख को स्वीकार कर लेते है कि जो होता है अच्छा ही है, या सबकुछ अच्छा है। हम में जो जितना ही चतुर और बुद्धिमान है, वह उतना ही जीवन के अर्थ वा प्रयोजन को कम समझता है और हमारे दु ख और मृत्यु मे एक कूट व्यंग देखता है, परन्तु हमारे इस ढंग के खिलाफ़ ये मामूली आदमी जीते है और दु ख भी भोगते है और वे मृत्यु और कष्ट को शाति एवं स्थिरता-पूर्वक, और ज़्यादातर मामलो मे हँसी-खुशी के साथ, ग्रहण करते हैं। जब हमारे दायरे मे शातिपूर्ण मृत्यु, भय और निराशा से रहित मृत्यु, दुर्लभ अपवाद है, तब इन लोगो मे चिन्तापूर्ण, छटपटाहट से भरी हुई और दु खपूर्ण मृत्यु बहुत ही कम देखी जाती है। और ऐसे लोगो से दुनिया भरी पडी है जिनके पास उन सब वस्तुओ का सर्वथा अभाव है जो हमारे लिए या सुलेमान के लिए जीवन की विभूति है, फिर भी जो ऊँचे-से-ऊँचे आनन्द का अनुभव करते है। मैंने अपने इर्द-गिर्द और दूर तक देखा। मैने गुजरे हुए ज़माने के और आजकल के असंख्य लोक-समुदाय पर ध्यान दिया। इनमें जीवन का अर्थ समझने वाले और जीने एवं मरने मे समर्थ एक-दो या दस-बीस नही, बल्कि सैकडो, हजारों और लाखो मनुष्य मुझे दिखाई पडे। और यद्यपि उनमें भिन्न-भिन्न रंग-ढंग, आचार-व्यवहार, मन, शिक्षा और स्थिति के आदमी थे फिर भी मेरे अज्ञान के सर्वथा प्रतिकूल वे सब जीवन और मृत्यु का अर्थ समझते थे तथा अभाव एवं दु ख-कष्ट को सहते हुए शातिपूर्वक काम करते, जीते तथा मरते थे—उनको इनमे मिथ्याहंकार नही, बल्कि कुछ अच्छाई दिखाई देती थी।

मैंने इन आदमियो से प्रेम करना सीखा। जितनी ही मुझे उन लोगो के जीवन की जानकारी होती गई—उन लोगो के जीवन की जो जी रहे है तथा उनकी भी जो मर चुके हैं, पर उनके बारे मे मैने पढकर या सुनकर जानकारी हासिल की है—उतना ही उनके लिए मेरा प्रेम बढता गया

और मेरे लिए जीना आसान होता गया। लगभग दो वर्षों तक मेरी यह हालत रही और इस बीच मेरे अन्दर एक जबर्दस्त परिवर्तन हो गया—वह परिवर्तन जो बहुत दिनों से धीरे-धीरे घनीभूत हो रहा था और जिसकी आशा सदा मुझमे बनी रही थी। इसका नतीजा यह हुआ कि अपने दायरे के लोगो यानी धनवान और विद्वान् आदमियो की ज़िन्दगी न सिर्फ मेरे नज़दीक फीकी और बेस्वाद हो गयी, बल्कि मेरी नजरों मे उसकी कोई कीमत ही न रह गयी। हमारा सम्पूर्ण आचरण, वाद-विवाद, कला और विज्ञान हमारे सामने एक नई रोशनी मे आया। मैंने समझ लिया कि यह सब आत्म-असंयम मात्र है और उनमे कुछ अर्थ ढूंढ लेना असम्भव है; इसके प्रतिकूल श्रम करने वाले सब लोगों का, जो जीवन का निर्माण करते हैं, जीवन मुझे सच्चे अर्थ से भरा दिखायी पडा। मैंने समझा कि यही जीवन है और इस जीवन से प्राप्त होने वाला अर्थ ही सच्चा है : और मैंने इसे स्वीकार कर लिया।

: ११ :

मुझे याद आया कि जब मैं उन आदमियो को इन विश्वासो की घोषणा करते देखता था जिनके जीवन और आचरण मे उनका विरोध होता था तो इन्ही विश्वासो के प्रति मेरे हृदय मे विरक्ति पैदा होती थी और वे मुझे निस्सार प्रतीत होते थे, पर जब मैंने उन लोगो को देखा जो इन विश्वासो के अनुकूल जीवन व्यतीत करते थे तब उन्हीं विश्वासो ने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया और वे मुझे ठीक मालूम पडने लगे। इन बातो की याद आने पर मैंने समझा कि क्यों तब मैंने इन विश्वासो को अस्वीकार कर दिया था और उन्हे निरर्थक पाया था, और क्यों अब उन्हीं को स्वीकार करता हूँ और उन्हें अर्थ एव प्रयोजन से पूर्ण पाता हूँ। मैं समझ गया कि मैंने गलती की थी और क्यो गलती की थी। इस गलती का कारण मेरा गलत तरीके पर सोचना उतना न था जितना मेरा गलत तरीके पर जीवन व्यतीत करना था। मैने समझ लिया कि मेरे किसी विचार-दोष ने सत्य को मुझसे छिपा नहीं रक्खा था, बल्कि आकाक्षाओ और वासनाओं की तृप्ति के प्रयत्न मे बीतने वाले मेरे विषयासक्त जीवन ने ही इस सत्य को मेरी आँखों की ओट कर रक्खा था। अब यह भी मेरी समझ मे आ गया कि मेरा सवाल कि 'मेरा जीवन क्या है' और उसका जवाब—'वह एक बुराई है'—बिल्कुल ठीक था। गलती सिर्फ़ इतनी थी कि यह जवाब सिर्फ़ मेरी ज़िन्दगी की ओर संकेत करता था, पर मैं इसे सब लोगों के सामान्य-जीवन पर घटाता था। अब मैंने फिर अपने तई सवाल किया कि मेरा जीवन क्या है और मुझे जवाब मिला एक बुराई और असंगति। और सचमुच मेरा जीवन—भोग-विलास और आकाक्षाओ का जीवन—बुरा और निरर्थक था, इसलिए वह उत्तर—'जीवन एक बुराई और असंगति है'—सिर्फ़ मेरे जीवन की ओर संकेत करता

था, न कि सामान्य मानव जीवन की ओर। तब मैंने उस सत्य को समझा, जिसे बाद में 'गास्पेल' या महात्मा ईसा के सदुपदेशों में पाया, कि 'मनुष्य प्रकाश की अपेक्षा अंधकार को ज़्यादा प्रेम करते हैं, क्योंकि उनके आचरण पाप-पूर्ण हैं। ग़लती या पाप करने वाला प्रत्येक आदमी प्रकाश से घृणा करता है और इसलिए प्रकाश के समीप नहीं जाता कि उसके आचरणों और कामों का तिरस्कार किया जायगा।' मैंने यह भी अनुभव किया कि जीवन के अर्थ को समझने के लिए पहले तो यह ज़रूरी है कि हमारी ज़िन्दगी बुराई से भरी और निरर्थक न हो, और फिर उसकी व्याख्या करने के लिए विवेक की आवश्यकता पड़ती है। तब मेरी समझ मे आया कि क्यों इतने लम्बे अर्से तक मैं ऐसे स्पष्ट सत्य के इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहा और यह भी कि अगर किसी को मानव-जाति के जीवन के विषय मे सोचना और बोलना हो तो उसे उसी जीवन के बारे मे सोचना और बोलना चाहिए, न कि उन लोगों के जीवन के विषय मे जो पंगु और परोपजीवी जीवन बिताते हैं। यह सत्य तो सदा उतना ही सच्चा था जितना दो और दो मिलकर चार होते हैं। पर मैंने इसे स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि दो-दो चार मान लेने पर मुझे यह भी मानना पड़ता कि मैं बुरा हूँ, और मेरे लिए यह अनुभव करना कि मै अच्छा-भला हूँ, दो-दो बराबर चार के स्वीकार करने से कहीं ज़्यादा ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण था। यह ज्ञान होने पर मैं अच्छे-भले आदमियों के प्रति आकर्षित हुआ, उनको प्यार करने लगा, अपने प्रति मेरे मन मे घृणा पैदा हुई और मैंने सत्य को स्वीकार किया। अब सब बातें मेरे सामने स्पष्ट हो गयीं।

अगर एक जल्लाद जिसकी सारी ज़िन्दगी लोगों को दारुण-यन्त्रणा देने और उनका सिर काटने मे बीती हो,—या एक शराबी वा पागल जो एक ऐसे अँधेरे कमरे में ज़िन्दगीभर रहा हो जिसे उसने अपवित्र कर रक्खा है और जो सोचता हो कि इसे छोड़कर बाहर निकलते ही वह नष्ट हो जायगा—अपने तईं सवाल करे कि 'जीवन क्या है?' तो वह इसके सिवा और क्या जवाब पा सकता है कि जीवन सबसे बड़ी

बुराई है। इस पागल का जवाब बिल्कुल ठीक होगा, पर वहीं तक जहाँ-तक यह ख़ुद उस पर लागू होता है। अगर कहीं मैं भी ऐसा ही एक पागल होऊँ? और कहीं हम सब धनवान और निठल्ले आदमी इसी तरह पागल हो तब? मैंने अनुभव किया कि हम सब सचमुच ऐसे ही पागल है। कम-से-कम मै तो ज़रूर ऐसा था।

चिड़िया का निर्माण ही इस तरह का होता है कि वह ज़रूरी तौर पर उड़े, चारा इकट्ठा करे और अपना घोंसला बनाए और जब मैं किसी चिड़िया को ऐसा करते देखता हूँ तो उसके आनन्द से मुझे भी खुशी होती है। बकरी, ख़रगोश और भेड़िए भी इस तरह बनाये गये है कि वे अपने लिए भोजन जुटायें, बच्चे पैदा करें और कुटुम्ब को खिलायें, उनका पालन-पोषण करें और जब वे ऐसा करते है तब मुझे दृढ विश्वास होता है कि वे सुखी है और उनका जीवन ठीक तौर से बीत रहा है। फिर आदमी को क्या करना चाहिए? उसे भी जानवरों की तरह अपनी जीविका उपार्जन करना चाहिए। दोनों मे सिर्फ़ एक फ़र्क है कि अगर आदमी यह काम इकले करेगा तो मिट जायगा, उसे जीविका न सिर्फ़ अपने लिए, बल्कि सबके लिए प्राप्त करनी चाहिए। और जब वह ऐसा करता है तब मुझे पक्का विश्वास हो जाता है कि वह सुखी है और उसकी ज़िन्दगी ठीक तौर पर बीत रही है। पर मैंने अपने जिम्मेदारी से भरे जीवन के सारे तीस वर्षों मे क्या किया? सब के लिए जीविका उपार्जन करना तो दूर, मैंने कभी अपने लिए भी खाद्य-सामग्री पैदा न की। मैं एक परान्नजीवी की तरह जीता रहा और अपने तई सवाल करता रहा कि मेरे जीवन का प्रयोजन क्या है? मुझे उत्तर मिला 'कोई प्रयोजन नहीं।' अगर मानव-जीवन का अर्थ उसे पुष्ट करने मे है तो फिर मैं—जो तीस साल तक जीवन का समर्थन और पुष्टि करने मे नहीं, बल्कि अपने अन्दर और दूसरों के अन्दर उसका विनाश करने मे लगा रहा—इसके सिवा और कोई जवाब कैसे हासिल कर सकता था कि मेरा जीवन निरर्थक और दूषित है? निस्सन्देह वह निरर्थक और दूषित दोनों था।

विश्व का जीवन किसी के संकल्प से चल रहा है—सारे विश्व के जीवन और हमारे जीवन से कोई अपना तात्पर्य सिद्ध करता है। उस संकल्प-शक्ति का अर्थ समझने की आशा करने के लिए पहले हमसे जिस कार्य की उम्मीद की जाती है, उसे करना चाहिए। लेकिन यदि मैं वह न करूँ जिसकी उम्मीद मुझसे की जाती है तो मैं कभी समझ न सकूँगा कि मुझसे क्या करने की उम्मीद की जाती है और यह समझना तो और मुश्किल होगा कि हम सब लोगो से और सारे विश्व से क्या करने की आशा की जाती है।

अगर एक नंगे भिखारी को सड़क से पकड़कर सुन्दर भवन मे ले जाकर रक्खा जाय, उसे अच्छी तरह खिलाया पिलाया जाय और उसे ऊपर-नीचे एक हैंडिल घुमाने का काम दिया जाय तो प्रकट है कि इस बात पर बहस करने के पहले कि क्यो उसे सड़क से वहाँ लाया गया और क्यों उसे हैंडिल घुमाना चाहिए और यह कि क्या वहाँ का सारा काम सुव्यवस्थित है, मतलब और सब बातों के पहले उसे हैंडिल घुमाना चाहिए। अगर वह हैंडिल को घुमायेगा तो उसे खुद पता लग जायगा कि इससे एक पम्प चलाया जाता है और पम्प के ज़रिये पानी निकलता है और उस पानी से बाग़ की क्यारियों की सिंचाई होती है। तब वह पम्पिग स्टेशन से दूसरी जगह ले जाया जायगा, जहाँ वह फल चुन कर इकट्ठे करेगा और अपने मालिक के आनन्द मे साझीदार होगा,—इस तरह धीरे-धीरे तरक्की करते हुए और छोटे पदो से बड़े पदों की ओर बढ़ते हुए वह दिन-दिन वहाँ की व्यवस्था की ज्यादा जानकारी प्राप्त करता जायगा और इस तरह जब वह खुद वहाँ के काम में हिस्सा लेने लगेगा तो उसके मन मे यह प्रश्न करने का खयाल ही न उठेगा कि वह क्यों वहाँ है। इसमे तो सन्देह ही नहीं कि तब वह मालिक की बुराई न करेगा।

इसी तरह जो लोग उसकी इच्छा का पालन करते हैं यानी सीधे-सादे, अशिक्षित श्रमिक, जिन्हे हम जानवर समझते हैं, मालिक की बुराई नहीं करते, लेकिन हम बुद्धिमान लोग मालिक का दिया भोजन तो कर लेते है लेकिन मालिक जो चाहता है उसे नहीं करते,—करना तो दूर रहा उलटे एक

गोल मे बैठ कर बहस करते हैं 'क्यो हमे उस हैंडिल को चलाना चाहिए ? क्या यह वाहियात नहीं है ?' और निर्णय करते हैं। हम निर्णय करते है कि मालिक मूर्ख है, या उसका अस्तित्व ही नहीं है, और हम बुद्धिमान हैं, पर सिर्फ यह अनुभव कर पाते हैं कि हम बिल्कुल निरर्थक है और हमे किसी तरह अपने से पिंड छुडाना चाहिए।

: १२ :

तार्किक ज्ञान के भ्रम की चेतना ने मुझे फालतू युक्ति, तर्क वा विवाद के प्रलोभन से छुडाने मे सहायता की। यह विश्वास कि सत्य का ज्ञान तदनुकूल आचरण से ही हो सकता है, मुझे अपनी जीवन-विधि के औचित्य और सचाई मे सन्देह पैदा करने का कारण हुआ, लेकिन मेरी रक्षा केवल इस कारण सम्भव हुई कि मै अपने अलग-अलग रहने और अपने को एक विशिष्टवर्ग का मान लेने के भाव को छोड सका और देहात के लोगो, मेहनत-मजूरी करने वालो के वास्तविक जीवन को देख सका तथा यह समझ सका कि केवल यही सच्चा जीवन है। मैंने समझ लिया कि यदि मै जीवन और उसके अर्थ वा प्रयोजन को समझना चाहूँ तो मुझे परान्नजीवी की नहीं, बल्कि सच्ची ज़िन्दगी वितानी चाहिए और सच्ची मानवता ने जीवन को जो अर्थ प्रदान किया है उसे ग्रहण करना और अपने को उस जीवन मे निमग्न करके उसको पहचानना चाहिए।

उस ज़माने मे मेरे ऊपर जो गुज़री उसकी दास्तान यो है। पूरे साल भर तक, जब प्रतिक्षण मेरे मन मे यह प्रश्न उठता था कि क्यो न मै गोली या फॉसी की रस्सी से सारे झगडे का खात्मा कर दूँ, तभी उन विचार-धाराओ के साथ-साथ, जिनके बारे मे मै ऊपर जिक्र कर चुका हूँ, मेरा हृदय एक वेदनामयी अनुभूति से दब रहा था। इसे मैं ईश्वर की खोज के सिवा और कुछ कहने मे असमर्थ हूँ।

मै कहना चाहता हूँ कि ईश्वर की इस खोज मे तर्क नही, अनुभूति थी, क्योंकि यह खोज मेरे विचार-प्रवाह से नहीं पैदा हुई थी, (उसमे उसका प्रत्यक्ष विरोध भी था) बल्कि हृदय से उद्‌भूत हुई थी। यह किसी अज्ञात प्रदेश में अनाथ और इकले पडजाने और किसी से सहायता पाने की आशा की भावना थी।

यद्यपि मुझे पूरा विश्वास था कि ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करना असंभव है (कांट ने दिखा दिया था, और मैं उसकी बात को समझता भी था, कि उसे सिद्ध या प्रमाणित नहीं किया जा सकता), फिर भी मैं ईश्वर की प्राप्ति की चेष्टा मे लगा रहा, मैंने आशा रक्खी कि वह मुझे प्राप्त होगा और पुराने स्वभाव के कारण उस ईश्वर के प्रति प्रार्थना और विनय करता रहा जिसकी मुझे खोज थी, पर जिसे अभी तक मैंने पाया न था। कांट और शापेनहावर ने जिन तर्कों के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करना असम्भव बताया था उन सब पर मैं मन मे विचार करने लगा। मैंने उनकी जॉच शुरू की और उनका खंडन करने लगा। मैंने अपने तईं कहा कि 'कारण' वा हेतु काल एवं अवकाश की भॉति कोई विचार-श्रेणी नहीं है। यदि मेरा अस्तित्व है तो इसका कोई कारण अवश्य होगा और फिर इन कारणों का भी कोई कारण होगा। और सबका जो प्रथम या मूल कारण है उसे ही लोगों ने 'ईश्वर' कहा है। मैं इस विचार पर रुका और अपनी सारी शक्ति के साथ उस आदि कारण की उपस्थिति को अनुभव करने की कोशिश की। और ज्योंही मैंने स्वीकार कर लिया कि कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जिसके वश मे मैं हूँ, त्योंही मैंने अनुभव किया कि अब मेरे लिए जीना संभव है। लेकिन मैने अपने तईं पूछा वह कारण वा शक्ति क्या है? उसका चिन्तन मुझे किस प्रकार करना चाहिए? उस शक्ति के साथ जिसे मैं 'ईश्वर' कहता हूँ, मेरा सम्बन्ध क्या है? इन सवालों के मुझे वही पूर्व-परिचित उत्तर मिले 'वह स्रष्टा और पालक है।' इस जवाब से मुझे संतोष नहीं हुआ, और मैंने अनुभव किया कि जिस चीज़ की मुझे अपने जीवन के लिए आवश्यकता है उसे मै अपने अन्दर-ही-अन्दर खो रहा हूँ। मै डर गया और जिस ईश्वर की खोज मे मै था, उसी से प्रार्थना करने लगा कि वह मेरी सहायता करे। लेकिन मैं जितनी ही प्रार्थना करता था उतना ही मुझे यह स्पष्ट होता गया कि 'वह' मेरी नहीं सुनता है और कोई ऐसा नहीं है जिसके सामने मै अपनी पुकार करूँ। तब हृदय की गहरी निराशा के साथ, मैंने कहा : 'प्रभु! मुझपर कृपा करो। मेरी रक्षा करो।

हे नाथ ! मुझे ज्ञान दो !' परन्तु किसी ने मुझपर कृपा नहीं की और मैं अनुभव करने लगा कि मेरे जीवन की गति रुक रही है।

लेकिन हर तरफ़ से टकराकर वार-बार मैं इसी नतीजे पर पहुँचता कि बिना किसी कारण या हेतु वा प्रयोजन के इस संसार में मेरा आगमन संभव नहीं है, मैं पक्षी के उस बच्चे की तरह नहीं हो सकता जो एकाएक अपने घोंसले से नीचे गिर पड़ा हो। और यदि मैं मान भी लूँ कि वात ऐसी ही है और मै पीठ के वल लम्बी घासों पर पड़ा हुआ चीख़ रहा हूँ, तव भी तो मै चीख़ता इसीलिए हूँ कि मै जानता हूँ कि एक माँ ने मुझे अपने पेट मे वढाया, सेया, जन्म दिया और चारा चुगा चुगाकर मुझे बड़ा किया है तथा वह मुझे प्यार करती है। तव वह—वह माँ कहाँ है? अगर मुझे त्याग दिया गया है तो वह कौन है जिसने मुझे त्यागा है? मैं अपने से यह वात छिपा नहीं सकता कि किसी-न-किसी ने मुझे जन्म दिया, पाला और मुझे प्रेम किया है। तव वह 'कोई' कौन है? फिर वही उत्तर 'ईश्वर'? तव वह मेरी खोज, मेरी निराशा और मेरे संघर्ष को जानता है और देख रहा है।

तव मैंने अपने मनमे कहा—'उसका अस्तित्व है।' इसे स्वीकार करने के अनन्तर क्षणभर मे मेरे अन्दर जीवन उठ खड़ा हुआ और मुझे जीवन के आनन्द और सभवनीयता का अनुभव हुआ। पर फिर वही वात हुई, ईश्वर के अस्तित्व की इस स्वीकृति के वाद मैं उसके साथ अपने सम्बन्ध का पता लगाने चला, और फिर मैंने उस ईश्वर की कल्पना की, जो हमारा स्रष्टा है और जिसने अपने पुत्र को हमारे उद्धार के लिए पृथ्वी पर भेजा, वस वह जगत् और मुझसे पृथक् किया हुआ ईश्वर मेरी आँखों के सामने ही वर्फ़ के टुकड़े की तरह पिघलकर वह गया, उसका कोई चिह्न नहीं रह गया और फिर मेरे अन्दर जीवन का वह स्रोत सूख गया, निराशा से मेरा मन भर गया और मैंने अनुभव किया कि सिवाय अपनी हत्या कर डालने के अव मै और कुछ नहीं कर सकता। और सवसे वुरी वात तो यह थी कि मैं अनुभव करता था कि मैं अपने को मार भी नहीं सकता।

केवल दो या तीन वार नहीं, वल्कि सैकडो वार मेरी यही दशा हुई, पहले आनन्द एवं उल्लास और फिर जीवन की असंभवनीयता की चेतना और निराशा।

मुझे याद है, वसन्त की शुरूआत के दिन थे। मै वन मे अकेला चुपचाप बैठा उसकी ध्वनि सुन रहा था। जैसा कि मैने वरावर पिछले तीन वर्षों में किया था, उसी विषय पर मै ध्यान लगाकर सोच रहा था। मै पुन ईश्वर की खोज मे था।

मैने झुँझलाकर अपने से कहा—'अच्छा, मान लो कोई ईश्वर नहीं है। कोई ऐसा नहीं है जो मेरी कल्पना के वाहर की वस्तु हो और मेरे सारे जीवन की तरह वास्तविक हो। उसका अस्तित्व नही है और कोई चमत्कार उसके अस्तित्व को प्रमाणित नही कर सकते, क्योंकि चमत्कार तो मेरी ही कल्पना के अन्तर्गत है, फिर वे वुद्धि-ग्राह्य भी नहीं है।

'लेकिन जिस ईश्वर की मैं खोज करता हूँ उसके प्रति मेरा यह अन्तर्बोध, मेरी यह अन्तर्धारणा ? यह अन्तर्बोध कहाँ से आया ?' बस यह सोचते ही, फिर मेरा अन्तर जीवन की आनन्दमयी लहरों से भर गया। मेरे चतुर्दिक जो कुछ था सब जीवन से पूर्ण और सार्थक हो उठा। लेकिन मेरा यह आनन्द अधिक समय तक स्थिर न रह सका। मेरा मन फिर अपनी उधेड-वुन मे लग गया।

मैने अपने मनमें कहा—'ईश्वर की धारणा तो ईश्वर नही है। धारणा तो वह चीज़ है जो मेरे ही अन्दर जन्म लेती है। ईश्वर की धारणा तो एक ऐसी चीज़ है जिसे हम अपने अन्दर वना सकते या वनने से रोक सकते है। यह तो वह चीज़ नही है जिसकी खोज मे मैं हूँ। मैं तो उस चीज़ की खोज कर रहा हूँ जिसके विना जीवन सम्भव ही न हो।' वस फिर मेरे वाहर-भीतर जो कुछ था मानो सव निर्जीव होने लगा, और फिर मेरे मनमे अपने को खत्म कर देने की इच्छा पैदा हुई।

किन्तु तव मैने अपनी नज़र अपने पर, और मेरे अन्दर जो कुछ चल रहा था उसपर, डाली, और जीवन की गति के वन्द होने और फिर प्रफुल्लता और स्फूर्ति का प्रवाह जारी होने की उन क्रियाओ का स्मरण किया

जो मेरे अन्दर सैकड़ों बार घटित हो चुकी थी। मुझे यह याद आया कि मुझमें सिर्फ़ तभी तब जीवन की अनुभूति हुई जब-जब मैंने ईश्वर में विश्वास रक्खा। जो बात पहले थी, वही अब भी है, जीने के लिए मुझे सिर्फ ईश्वर के अस्तित्व के निश्चय की ज़रूरत है, और ज्योंही मैं उसे भूलता हूँ या उसमे अविश्वास करता हूँ त्योंही मेरी मृत्यु निश्चित है।

तब स्फूर्ति और मृत्यु के ये अनुभव क्या है? जब ईश्वर के अस्तित्व मे मेरे विश्वास का लोप हो जाता है तब मानो मेरी जीवन-शक्ति का अन्त हो जाता है, तब मै अपने को जीता हुआ नही अनुभव करता। अगर मेरे अन्दर उसे पाने की एक धुंधली-सी आशा न होती तो अबतक कभी का मैं अपनी हत्या कर चुका होता। अपने को सचमुच जीता हुआ तो मै तभी तक अनुभव करता हूँ जब तक मुझे 'उसकी' अनुभूति होती रहती है और मुझे उसकी खोज रहती है। 'तुम और क्या खोजते हो?' मेरे अन्दर एक आवाज हुई। 'यही वह है। वह है जिसके बिना कोई जी नहीं सकता। ईश्वर को जानना और जीवित रहना एक ही बात है। ईश्वर ही जीवन है।'

'ईश्वर की खोज करते हुए जीओ, तब तुम्हारा जीवन ईश्वरहीन न होगा।' तब मेरे अन्दर और बाहर जो कुछ था वह सब प्रकाश से पूर्ण हो उठा और उस प्रकाश ने फिर मुझे परित्याग नहीं किया।

इस तरह मैं आत्म-हत्या से बच गया। यह मैं नहीं कह सकता कि कब और कैसे यह परिवर्तन हुआ। जैसे धीरे-धीरे मेरे अन्दर की जीवन-शक्ति नष्ट हो गई थी और मेरे लिए जीना असम्भव हो उठा था, जीवन की गति बन्द हो गई थी और मुझे आत्म-हत्या करने की आवश्यकता प्रतीत होती थी, उसी तरह धीरे-धीरे मेरे अन्दर जीवन-शक्ति का प्रत्यागमन हुआ। और यह एक आश्चर्यजनक बात है कि जीवन की जो शक्ति मेरे अन्दर लौटी वह कोई नई नहीं थी, बल्कि वही पुरानी शक्ति थी जिसने मेरे जीवन के प्रारम्भिक दिनो में मेरा भारवहन किया था।

मैं पुन उसी अवस्था मे पहुँच गया जो बचपन और किशोरावस्था

के प्रारम्भिक दिनों में थी। पुन मेरे हृदय मे उस संल्कप-शक्ति* के अन्दर विश्वास हुआ जिसने मुझे उत्पन्न किया और जो मुझसे कुछ आशा रखती है। मैं पुन इस विश्वास पर पहुँचा कि मेरे जीवन का प्रधान और एक-मात्र उद्देश्य पहले से अधिक अच्छा होना अर्थात् उस संकल्प-शक्ति के अनुसार जीवन-व्यतीत करना है। मै इस विश्वास पर पहुँचा कि मानव-जाति ने अपने पथ-प्रदर्शन के लिए जो कुछ उत्पन्न किया है उसमे ही मैं उस संकल्प-शक्ति की अभिव्यक्ति को प्राप्त कर सकता हूँ और जो सुदूर अतीतकाल मे मेरी आँखो की ओट रही है। मतलव यह कि मै ईश्वर मे, नैतिकपूर्णता मे और जीवन के प्रयोजन की परम्परा मे विश्वास करने लगा। दोनों अवस्थाओं मे अन्तर इतना ही था कि उस समय ये सव वाते विना ज्ञान के स्वीकार किये हुए था, किन्तु अव मैं जान गया था कि इसके विना मेरा जीवन ही असम्भव है।

मुझ पर जो बीती वह कुछ इस तरह की वात थी · मै एक नाव मे (मुझे याद नही है कव) चढा दिया गया और किसी अज्ञात किनारे से धक्का देकर नदी की ओर वढ़ा दिया गया। मुझे दूसरे किनारे की तरफ इशारा करके गन्तव्य स्थान का एक धुँधला-सा आभास दे दिया गया और मेरे अनभ्यस्त हाथो मे डॉड पकड़ा देने के बाद लोगो ने मुझे अकेले छोड दिया। मैने अपनी शक्ति-भर खेकर नाव को आगे बढ़ाया, लेकिन ज्यो-ज्यो मै मध्यधारा की ओर बढा त्यो-त्यो प्रवाह तीव्र होता गया और वह वार-वार मुझे मेरे लक्ष्य से दूर वहा ले जाने लगा। अपनी तरह मैने और भी वहुत से लोगो को धारा मे वह जाते देखा। कुछ ऐसे नाविक थे जो वरावर खेते भी जा रहे थे, दूसरे कुछ ऐसे थे जिन्होंने अपनी पतवार डाल दी थी। वहाँ मैंने आदमियो से भरी हुई अनेक वड़ी-वड़ी नावें देखीं। कुछ धारा से संघर्ष करती थीं, कुछ ने उसके आगे आत्म-समर्पण कर दिया था। जितना ही आगे मै वढता गया उतना ही मेरा ध्यान अपनी

* टाल्सटाय ने 'ईश्वरेच्छा' के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है।

दिशा भूलकर धारा की ओर वहे जाते हुए लोगो की ओर अधिकाधिक आकर्षित होता गया और उतना ही मै अपना मार्ग और लक्ष्य, जिधर जाने का संकेत मुझे किया गया था, भूलता गया। ठीक मध्य-धारा मे, जहाजों और नावो की भीड मे, जिन्हे धारा वहाये लिए जा रही थी, मैं अपनी दिशा बिल्कुल भूल गया और मैंने भी अपनी पतवार डाल दी। मेरे चारो तरफ़ हँसते और उल्लास मनाते हुए वे सब लोग जो धारा के साथ वहे जा रहे थे, वे सब लोग मुझे तथा परस्पर यह विश्वास दिला रहे थे कि और किसी दिशा मे जाना संभव नही है। मैने उनका विश्वास कर लिया और उनके साथ वहने लगा। मै वहुत दूर तक वहता हुआ चला गया इतनी दूर तक कि मुझे नदी की तीव्र धाराओं के गिरने का जोरदार शब्द सुनाई पड़ने लगा; मैने समझ लिया कि अव मेरा नाश निश्चित है। मैंने उस प्रपात में नावों को टुकड़े-टुकडे होते देखा। मैंने अपना होश-हवास दुरुस्त करने की चेष्टा की। एक अर्से से मैं यह समझने मे असमर्थ था कि मेरे साथ क्या घटनाये हुई हैं। मुझे अपने सामने सिवाय उस विनाश के और कुछ दिखलाई न देता था, जिसकी ओर मैं तेज़ी से वहता चला जा रहा था और जिसका भय मेरे प्राणों मे समा गया था। मुझे कहीं रक्षा का कोई स्थान दिखाई न पडता था, और मैं नहीं जानता था कि मुझे क्या करना चाहिए, किन्तु जव मैंने पीछे की ओर दृष्टि फेरी तो यह देखकर आश्चर्य-चकित रह गया कि असंख्य नौकायें श्रमपूर्वक लगातार धारा को काट कर वढ रही हैं और तव मुझे किनारे का, डाडों का और अपनी दिशा का स्मरण आया और मैंने पीछे लौटकर और धारा को चीर कर तट की ओर वढने मे अपनी शक्ति लगाई।

यह तट ईश्वर था, दिशा परम्परा थी, और तट की ओर वढने तथा ईश्वर से मिलने की जो स्वतन्त्रता मुझे दी गई थी, वही पतवार थी। इस प्रकार जीवन की शक्ति पुन मेरे अन्दर जाग्रत हुई और पुन. मैंने जीना शुरू किया।

: १३ :

मै अपने दायरे के लोगों के जीवन से दूर हट गया और मंजूर किया कि हमारी ज़िन्दगी कोई ज़िन्दगी नही, वल्कि ज़िन्दगी का एक स्वॉग भर है और वैभव एवं वहुतायत की जिस स्थिति में हम रहते हैं वह हमे जीवन को समझने की संभावना से वंचित कर देती है। मुझे यह भी स्वीकार करना पडा कि जीवन को समझने के लिए हमारे जैसे परान्न-जीवियों और जीवन पर भार वने लोगो के अपवाद-तुल्य जीवन को नहीं, वल्कि सीधे-सादे मेहनत-मजूरी करने वाले लोगों के जीवन को समझना चाहिए—उन लोगो के जीवन को जो जीवन का निर्माण करते हैं। वे जीवन का क्या अर्थ और प्रयोजन समझते है, इस पर भी हमे विचार करना चाहिए। हमारे चारो ओर मेहनत-मजूरी करनेवाले रूसी लोग थे, इसलिए मै उनकी ओर झुका और इस वात पर ध्यान देने लगा कि वे जीवन का क्या अर्थ और प्रयोजन समझते है। उनके अर्थ को शव्दो मे कहना चाहे तो यों कहा जा सकता है: इस दुनिया मे हरएक आदमी ईश्वर की इच्छा से आया है। और ईश्वर ने मनुष्य को इस तरह वनाया है कि प्रत्येक आदमी अपनी आत्मा का विनाश वा रक्षण कर सकता है। जीवन मे मनुष्य का उद्देश्य अपनी आत्मा की रक्षा करना है और अपनी आत्मा की रक्षा करने के लिए उसे दिव्य वा 'दैवी' रूप मे जीवन विताना चाहिए, दिव्य या दैवी रूप मे रहने के लिए उसे जीवन के सव सुखोपभोगो का त्याग करना चाहिए, स्वयं श्रम करना चाहिए, नम्र और दयावान वनना तथा कष्ट सहन करना चाहिए। लोग जीवन का यह अर्थ धर्म और निष्ठा की उस सम्पूर्ण शिक्षा से ग्रहण करते है जो उन्हे उनके पुरोहितो, पादरियो और जनता के वीच जीवित परम्पराओं से मिलती है। यह अर्थ मेरे निकट स्पष्ट था और मेरे

हृदय के नज़दीक था। पर हमारे असाम्प्रदायिक लोगो की लोकप्रिय निष्ठा के इस अर्थ के साथ बहुत सी ऐसी बातें भी अविभेद्य रूप से मिल गई थीं जो मेरी समझ में नहीं आती थीं और जिनसे मुझे घृणा होती थी। सर्व-साधारण इनको अलग-अलग नहीं कर सकते; मैं भी नही कर सकता। और यद्यपि लोगो के विश्वास के साथ मिली बहुतेरी बातो पर मुझे आश्चर्य होता था फिर भी मैंने उनकी सारी बातों को ग्रहण कर लिया; उपासनाओ मे शामिल होने लगा; सुबह शाम प्रार्थना मे सिर झुकाने लगा, उपवास भी किये। पहले मेरी बुद्धि या तर्क-शक्ति ने किसी का विरोध नहीं किया। जो बातें पहले मुझे असंभव प्रतीत होती थीं, अब मेरे अन्दर किसी प्रकार का विरोव पैदा नहीं करती थीं।

विश्वास वा निष्ठा के साथ मेरा पहले का और अब का सम्बन्ध बिल्कुल जुदा था। पहले जीवन मुझे अर्थ से भरा प्रतीत होता था और विश्वास बिल्कुल अनावश्यक, अनुचित और जीवन से असम्वद्ध निर्देशों के स्वेच्छाचारी नियंत्रण की तरह मालूम पडता था। तब मैंने अपने मनमें पूछा कि आखिर इन निर्देशों का अर्थ क्या है और मुझे निश्चय हो गया कि उनका कुछ अर्थ नहीं है। मैंने उन्हें अस्वीकार कर दिया। पर अब इसके प्रतिकूल मैं दृढतापूर्वक जानता था कि (बिना श्रद्धा वा निष्ठा के) मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं है, न कोई अर्थ हो ही सकता है, और विश्वास एव श्रद्धा की ये सब शर्तें और बातें अनावश्यक नहीं रह गई, बल्कि असंदिग्ध अनुभव के द्वारा मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि निष्ठा वा श्रद्धा द्वारा मिलनेवाले ये निर्देश ही जीवन को एक अर्थ प्रदान करते हैं—उसे सार्थक बनाते हैं। पहले मैं उन्हें अनावश्यक, निरर्थक बकवाद की तरह देखता था, पर अब यद्यपि मै उनको समझता नहीं था फिर भी इतना जानता था कि उनका कुछ अर्थ अवश्य है, और मैंने अपने तई कहा कि मुझे उसको अवश्य समझना चाहिए।

मैंने अपने मन में कहा कि विवेकयुक्त सम्पूर्ण मानवता की भाँति धर्म निष्ठा का ज्ञान भी किसी गोप्य स्रोत मे प्रवाहित होता है। वह स्रोत ईश्वर है, जो मानव शरीर एवं मानवी विवेक दोनो का मूल है। जैसे मेरा शरीर

मुझे ईश्वर से मिला है, वैसे ही मेरा विवेक और जीवन का मेरा ज्ञान भी मुझे ईश्वर से ही प्राप्त हुआ है। इसलिए जीवन के उस ज्ञान या जानकारी के विकास की विभिन्न अवस्थायें वा श्रेणियाँ झूठी नहीं हो सकतीं। जिन सब बातों मे सर्वसाधारण का सच्चा विश्वास है वे अवश्य सत्य होंगी, उनकी अभिव्यक्तियाँ भिन्न-भिन्न तरह से हुई हों, पर वे असत्य नहीं हो सकतीं। इसलिए अगर वे मेरे सामने असत्य के रूप मे आती हैं तो इसका सिर्फ़ यही मतलब है कि मैं उनको समझ नहीं पाया हूँ। मैंने अपने से यह भी कहा कि हरएक धर्म वा धर्म-निष्ठा का तत्त्व जीवन को ऐसा अर्थ प्रदान करना है जिसे मृत्यु नष्ट नहीं कर सकती। धर्म-निष्ठा द्वारा विलासिता में मरते हुए राजा, शक्ति से अधिक श्रम करने के कारण पीड़ित वृद्ध दास, बुद्धि-हीन बच्चे, ज्ञानवान वृद्ध, ख़र-दिमाग़ बुढिया, तरुण-सुखी पत्नी, वासनाओं से सन्तप्त नौजवान, मतलब हर तरह की शिक्षा और जीवन मर्यादा के आदमियों के सवालों का जवाब दिया जा सके, इसके लिए यह समझ लेना जरूरी है कि यद्यपि जीवन के इस नित्य प्रश्न—कि 'मै क्यों जीता हूँ और मेरे जीवन से क्या नतीजा निकलेगा ?'—का एकही उत्तर है यानी वह उत्तर तत्त्वत एक है, परन्तु उसके रूप अनेक होने ही चाहिएँ, और वह जितना ही एक, सच्चा और गहरा होगा, प्रयत्न-पूर्वक की जाने वाली उसकी अभिव्यक्ति मे उतनी ही विचित्रतायें एवं विकृतियाँ दिखाई पड़ेंगी। ये विचित्रतायें और विकृतियाँ प्रत्येक व्यक्ति के शिक्षण और मर्यादा के अनुकूल होंगी। परन्तु इस तर्क ने यद्यपि धर्म के कर्मकाण्ड पक्ष की अनेक असंगतियों को मेरी आँखों के सामने उचित सिद्ध करके पेश किया, फिर भी वह इतना काफ़ी नहीं था कि जीवन के इस महान् मामले—धर्म—में ऐसी बातें करने की आज्ञा देता जो मुझे आपत्तिजनक प्रतीत होती थीं। अपने सम्पूर्ण अन्त करण के साथ मैं ऐसी स्थिति मे पहुँचने की कामना करता था जिसमे सर्वसाधारण के साथ हिलमिल सकूँ और उनके धर्म के कर्मकाण्ड पक्ष का पालन एवं आचरण कर सकूँ, लेकिन मै वैसा कर नहीं सका। मुझे अनुभव होता था कि अगर मै ऐसा करता हूँ तो मानो अपने से ही झूठ बोलता हूँ और जो कुछ मेरे

निकट पवित्र है, उसका उपहास करता हूँ। जब मैं इस उधेड़बुन में पड़ा हुआ था तब नूतन रूसी धार्मिक लेखकों ने मुझे इस संकट से बचाया।

इन धर्मवेत्ताओं ने जो व्याख्या की वह यों थी कि 'हमारे धर्म का मुख्य सिद्धान्त चर्च (ईसाई मंदिर-संस्था) की निर्भ्रान्तता का सिद्धान्त है यदि हम इस सिद्धान्त को मान लेते हैं तो इससे अनिवार्य रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि चर्च जो कुछ मानता है वह सब सत्य है। बस, प्रेम द्वारा ग्रथित सच्चे आस्तिकों के एक समुदाय के रूप मे और प्रेम द्वारा ग्रथित होने के कारण सत्य-ज्ञान के स्वामी या ज्ञाता के रूप मे चर्च को मैंने अपने विश्वास वा निष्ठा का आधार बना लिया। मैंने अपने तईं कहा कि एक अलग व्यक्ति को दैवी या ईश्वरीय सत्य प्राप्त नहीं हो सकता; वह सत्य केवल प्रेम द्वारा जुड़े हुए लोगों के सम्पूर्ण समुदाय मे के सामने ही प्रकट हो सकता है। सत्य को पाने के लिए जुदा नहीं होना चाहिए और जुदा न होने के लिए यह ज़रूरी है कि आदमी प्यार करे और उन सब बातों को सहन करे जिनको वह नहीं मानता है। सत्य प्रेम के सामने अपने को प्रकट करता है और अगर तुम चर्च या ईसाई धर्मसस्था के आचारों के सामने सिर नहीं झुकाते तो तुम प्रेम का उल्लंघन या तिरस्कार करते हो, और प्रेम का उल्लघन करने के कारण तुम अपने को सत्य पहचानने और पाने की संभावना से वंचित करते हो।'

इस तर्क मे जो हेत्वाभास या वाक्छल था उसे उस समय मैं देख न सका। मै नहीं समझ सका कि प्रेम के संग्रथन से यद्यपि परमोच्च प्रेम की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु वह ईश्वरीय सत्य को देने मे असमर्थ है। मैं यह भी नहीं देख सका कि प्रेम कभी सत्य की किसी खास अभिव्यक्ति को संग्रथन या सम्मिलन की आवश्यक शर्त के रूप मे नहीं रख सकता। मेरे तर्क मे जो दोष थे उन्हें उस समय मैंने नहीं देखा, इसलिए कट्टर धर्म-संस्था के सम्पूर्ण आचारों को मानकर मैं उन्हे कार्यान्वित करने लगा—यद्यपि उनमे से अधिकाश का अर्थ मेरी समझ मे न आया था। उस समय मैंने अपने सम्पूर्ण अन्त करण के साथ सब तरह के तर्कों और विरोधों से बचने की कोशिश की और चर्च के जो वक्तव्य या बयान मेरे सामने आये उन्हे, जहाँ

तक मुझसे हो सका, उचित समझने और सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

ईसाई-धर्म-संस्था (चर्च) के आचारो और विधियों का पालन करते हुए मैंने अपनी बुद्धि वा तर्क-शक्ति को दवा दिया और उस परम्परा के आगे सिर झुका दिया जो सम्पूर्ण मानव-जाति मे पाई जाती है। मैंने अपने को अपने पूर्वजों यानी पिता, माता और दादा-दादी वगैरा के साथ—जिन्हे मैं प्रेम करता था—मिला दिया। उन्होंने तथा मेरे सारे पूर्वजो ने इसी प्रकार चर्च मे विश्वास रखते हुए ज़िन्दगी गुज़ारी थी और उन्होने ही मुझे उत्पन्न किया था। मैने उन लाखो-करोडों सामान्य लोगो के साथ भी अपने को मिला लिया जिनकी मैं इज़्ज़त करता था। फिर इन आचारो के पालन मे कोई 'बुराई' तो थी नहीं। (मै अपनी वासनाओं के प्रति आसक्ति को ही 'बुराई' मानता था)। गिर्जे की उपासनाओं में शामिल होने के लिए जब मैं सुबह जल्दी उठता था तो समझता था कि मैं कोई अच्छा ही काम कर रहा हूँ क्योंकि अपने पूर्वजों और समकालिको के साथ ऐक्य स्थापित करने और जीवन का अर्थ प्राप्त करने के लिए, मै अपने मानसिक अहंकार का त्याग करते हुए अपने शारीरिक सुखो को छोड रहा हूँ। इसी तरह घुटने मोडकर प्रार्थना कहने, व्रत-उपवास करने, ईसा के स्मरणार्थ भोज में बैठने (कम्यूनियन) वगैरा मे भी अच्छाई देखता था। चाहे ये त्याग कितने ही नगण्य हो, मैं उनको कुछ अच्छे के लिए ही करता था। मै व्रत-उपवास रखता, घर पर तथा गिर्जे में नियत समय पर प्रार्थना करता एवं अन्य आचारों का पालन करता था। गिर्जे में जब धर्मोपदेश होता तो मैं उसके एक-एक शब्द पर ध्यान देता और जहाँ तक हो सकता उसमे अर्थ ढूँढने की कोशिश करता था। धर्मोपदेश मे मेरे लिए सबसे महत्वपूर्ण शब्द ये होते थे : 'हम एक-दूसरे को एक समान प्यार करें।' आगे के इन शब्दों को—'हम परमपिता, उसके पुत्र और 'होली घोस्ट'* की एकता मे विश्वास रखते है।' मैं दरगुज़र कर जाता था, क्योंकि उन्हें समझ न सकता था।

* 'होलीघोस्ट'=ईसाई त्रिमूर्ति का तृतीय पुरुष : जीवात्मा—परमपिता एवं पुत्र (ईसा) से उद्भूत।

: १४ :

जीवित रहने के लिए विश्वास या श्रद्धा रखना उस समय मेरे वास्ते इतना जरूरी हो गया था कि अपनी अचेतनता मे मैंने धर्मशास्त्र के पारस्परिक विरोधों और अस्पष्टताओं को अपने से छिपाया। लेकिन आचारों और विधियों मे इस तरह अर्थ देखने की भी एक सीमा थी। प्रार्थना का एक बड़ा हिस्सा सम्राट् या ज़ार तथा उसके सम्वन्धियों की हित-कामना से भरा हुआ था। मैंने अपने मनको समझाने की कोशिश की कि चूँकि उनके सामने प्रलोभन अधिक हैं, इसलिए उनके लिए प्रभु से प्रार्थना करना उचित ही है। इसी तरह अपने शत्रुओं और बुराइयों को पॉव तले दवा सकने की प्रार्थना के वारे मे मैंने अपने मनको यों समझाने की कोशिश की कि यहॉ 'शत्रु' का अर्थ 'पाप' है। किन्तु इस तरह की प्रार्थनाओं मे उपासना भरी होती थी। पूजा वा उपासना का प्राय दो-तिहाई हिस्सा इसी प्रकार की वातों से भरा होता था, जिनका या तो कोई अर्थ ही मेरी समझ मे नही आता था अथवा यदि मैं खींच-तानकर उनका कोई अर्थ निकालने की कोशिश करता तो मुझे अनुभव होता था कि मैं झूठ वोल रहा हूँ और इस प्रकार ईश्वर के साथ मेरा जो सम्वन्ध है उसे नष्ट कर रहा हूँ और श्रद्धा की सम्पूर्ण सम्भावनाओं से अपने को वचित कर रहा हूँ।

कुछ ऐसा ही अनुभव मुझे ख़ास-ख़ास त्योहारो के वारे मे भी होता था। 'सैवेथ'* का स्मरण करना, यानी ईश्वर के ध्यान-पूजा मे एक दिन विताना, इसे तो मै समझ सकता था। लेकिन छुट्टी का मुख्य दिन प्रभु

* रविवार का दिन, जव ईसामसीह सूली पर पुनर्जीवित हो उठे थे। रूस में रविवार को 'पुनर्जीवन (रीजरेक्शन) दिवस' कहा जाता है।

ईसा के सूली पर पुन जीवित हो उठने के स्मारक-रूप मे मनाया जाता था और इस पुनजीवन की सच्चाई की मै किसी प्रकार कल्पना या अनुभूति न कर पाता था। रविवार की साप्ताहिक छुट्टी को भी 'पुनर्जीवन दिवस' का नाम दिया गया था। क्रिसमस या वड़ा दिन को छोडकर शेप ग्यारह वडे त्योहार चमत्कारों के स्मारक थे। इन दिवसो को मनाते समय मुझे अनुभव होता था कि उन्हीं बातो को महत्व दिया जा रहा है जिनका मेरे निकट कोई महत्व न था। मै मनको समझाने और खीच-तानकर अर्थ निकालने की कोशिश करता या अपने को प्रलुब्ध करनेवाली इन बातो को न देखने के लिए उधर से ऑख मूँद लेता था।

इनमे से ज्यादातर विचार सामान्य और महत्वपूर्ण धार्मिक विधियो को करते समय मेरे दिल में पैदा हुए थे। इनमे बपतिस्मा और 'कम्यूनियन' (ईसा के स्मरणार्थ भोज : प्रसाद जिसे ईसाई ईसा का रक्त-मॉस समझकर ग्रहण करते है) की प्रथायें मुख्य थी। इनमे कोई ऐसी वात न थी जो दिमाग़ मे न आ सकनेवाली हो, सब बातें साफ़ और समझ मे आने लायक थी और ऐसी बातें थी जो मुझे प्रलोभन की तरफ ले जाती मालूम पड़ती थी। मै वडी खीचातानी मे पड़ गया कि मुझे अपने तईं झूठ वोलना चाहिए या उन्हे अस्वीकार कर देना चाहिए।

वहुत वर्षों के बाद जब पहली वार मुझे 'यूकारिस्ट' (प्रभु ईसा के भोज का प्रसाद ईसा के रक्त-मॉस रुप मे) मिला तो मेरे मनकी जो हालत हुई, उसे मैं कभी भूल न सकूँगा। पूजा, पापो की स्वीकृति और प्रार्थनायें सब समझ मे आ सकनेवाली चीज़ें थी और उनसे मेरे मनमे आह्लाद हुआ कि जीवन का अर्थ मेरे सामने खुल रहा है। 'कम्यूनियन' को तो मैंने एक ऐसा कृत्य समझ लिया जो ईसा के स्मरणार्थ किया जाता हो और ईसा की शिक्षाओं को पूर्णत ग्रहण करने एवं पाप से मुक्त होने का निर्देश करता हो। यदि इस व्याख्या मे कुछ वनावट, कुछ कृत्रिमता थी तो मुझे उस वक्त उसका कुछ ध्यान न था। उस सीधे-साढे देहाती पादरी के सामने अपनी आत्मा की सम्पूर्ण गंदगी निकाल देने और अपने पापों को स्वीकार

करके अपने को दीन-हीन प्रदर्शित करने मे मुझे इतनी प्रसन्नता हुई थी, मै गिर्जे के लिए प्रार्थनायें लिखनेवाले अतीतकाल के धर्म-पिताओ के साथ तन्मयता प्राप्त करके इतना खुश था, पूर्वकाल और इस समय के आस्तिको के सान्निद्धय प्राप्त करके मुझे इतनी खुशी हासिल हुई थी कि अपनी व्याख्या वा सफ़ाई की कृत्रिमता की ओर ध्यान देने का मुझे मौका ही न मिला। लेकिन जब मै वेदी के द्वार के निकट पहुँचा और पुरोहित ने मुझसे कहलवाया कि 'मुझे विश्वास है कि जो कुछ मै निगलने जा रहा हूँ वह सचमुच (ईसा का) रक्त और मास है' तो मुझे अपने दिल मे दर्द का अनुभव हुआ। इसमे केवल असत्य की झलक ही नही थी, यह एक ऐसे आदमी के द्वारा की जाने वाली निर्दय मॉग थी जिसने कभी जाना ही नही कि धर्म-निष्ठा वा श्रद्धा क्या चीज़ है।

आज मै यह कह रहा हूँ कि यह एक निर्दय मॉग थी, लेकिन उस वक्त मै ऐसा नही समझता था। उस वक्त तो मुझे सिर्फ़ एक गहरी वेदना का अनुभव हुआ था, यह वेदना अवर्णनीय थी। युवावस्था की मेरी वह स्थिति अब न थी जिसमे मै समझता था कि जीवन मे सब कुछ स्पष्ट है। यह ठीक है कि मैने श्रद्धा वा धर्म-विश्वास को स्वीकार कर लिया, क्योंकि श्रद्धा वा धर्मनिष्ठा को छोड़कर दुनिया मे विनाश के अतिरिक्त मैने और कुछ न पाया था। इसलिए उस धर्मनिष्ठा का त्याग कर देना असंभव था और इसलिए मै झुक गया—मैंने माथा टेक दिया। मुझे अपने अन्त करण में एक ऐसी अनुभूति प्राप्त हुई जो इस स्थिति को सहन करने योग्य बनाने में मुझे सहायता देती रही। यह आत्म-दैन्य और नम्रता की अनुभूति थी। मैने अपने को दीन-हीन बना लिया, और पाखंड वा नास्तिकता की किसी अनुभूति के बग़ैर उस रक्त मॉस को निगल गया। ऐसा करते वक्त मेरे मन मे यही इच्छा थी कि मुझे विश्वास रखना चाहिए। लेकिन चोट पड चुकी थी और मै फिर दूसरी बार वहाँ न जा सका।

फिर भी मै चर्च या धर्म-संस्था की विधियो का पालन करता रहा और विश्वास करता रहा कि जिन धर्म-सिद्धान्तो का मै पालन कर रहा हूँ उनमे

सत्य निहित है। इसी वक्त मेरे साथ कुछ ऐसी बात हुई जिसे आज तो मैं समझता हूँ, पर जो उस समय आश्चर्यजनक मालूम पड़ती थी।

एक दिन मैं एक अशिक्षित किसान की बातें सुन रहा था। वह ईश्वर, धर्म, जीवन और मुक्ति के बारे में कह रहा था। इसी वक्त धर्मनिष्ठा का रहस्य अपने-आप मेरे सामने प्रकट हुआ। मैं जन-साधारण के निकट और भी खिंच गया; जीवन और धर्म-विश्वास के विषय में उनकी सम्मतियाँ सुनने लगा और दिन-दिन सत्य को मैं अधिकाधिक समझने लगा। यही बात उस वक्त भी हुई जब मैं सन्तों की जीवन-गाथायें पढ़ रहा था। ये मेरी बड़ी प्रिय पुस्तकें बन गई थी। इनमें चमत्कार की जो कथायें थीं उन्हें मैंने यह समझकर अलग कर दिया कि वे विचारों को चित्रित करनेवाली कथायें हैं। बाकी जो बचा उसके अध्ययन ने मेरे सामने जीवन का अर्थ प्रकाशित कर दिया। इन पुस्तकों मे मकैरियस महान की जीवनी थी; बुद्ध की कथा थी; संत जॉन च्रीसोस्तम के उपदेश थे और कुएँ में पड़े यात्री, सोना प्राप्त करनेवाले संन्यासी, तथा पीटर भठियारे की कथायें थी। उनमें शहीदों की कथायें थी और सबमें यह घोषणा की गई थी कि मृत्यु के साथ जीवन का अन्त नहीं होता; ऐसे लोगों की भी कथायें थी जो अशिक्षित और मूर्ख थे और चर्च वा धर्म-संस्था की शिक्षाओं के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे; लेकिन फिर भी वे त्राण पा गये।

लेकिन ज्योंही मैं शिक्षित और विद्वान आस्तिकों से मिला, अथवा उनकी पुस्तकें पढी, त्योंही अपने विषय में सन्देह, असन्तोष और निराशापूर्ण संघर्ष एवं विवाद से मेरा मन भर गया, और मैंने अनुभव किया कि मैं इन लोगों की वाणी के अर्थ में जितनाही घुसता हूँ उतनाही मैं सत्य से दूर जाता हूँ और अथाह खाई की ओर बढ़ता हूँ।

: १५ :

न जाने कितनी वार मैने किसानो की निरक्षरता और पाडित्य-हीनता पर उनसे ईर्ष्या की होगी ! धर्म के लक्ष्य-सम्वन्धी वक्तव्य मेरे लिए फिजूल और मिथ्या थे, परन्तु उनको उनमे कोई झुठाई नही प्रतीत होती थी। वे उन्हे स्वीकार कर सकते और उस सत्य मे विश्वास करते थे, जिसमे विश्वास रखने का मेरा भी दावा था। पर एक मैं ही अभागा और दुखिया ऐसा था जिसको साफ़ दिखाई दे रहा था कि इस सत्य के साथ असत्य के वडे वारीक तार एक-दूसरे से गुथे हुए हैं और मैं इस रूप मे सत्य को स्वीकार नहीं कर सकता।

लगभग तीन साल तक मेरी यह हालत रही। शुरू-शुरू मे जव मैं ईसाई-धर्म का एक प्रारम्भिक साधक वा विद्यार्थी था, सत्य से मेरा क्षीण सम्पर्क था और जो कुछ मुझे साफ़ मालूम पड़ता था उसका आभास-मात्र मे पा सका था तवतक यह आन्तरिक सघर्ष उतना प्रवल न था। क्योंकि जव मैं किसी वात को न समझता तो कह देता—'यह मेरा दोप है, मैं पापी हूँ।' लेकिन ज्यो-ज्यों मैं सत्य को अपनाता गया, और वे मेरे जीवन का आधार वनते गये त्यो-त्यों यह संघर्ष अधिकाधिक दु खदाई और पीड़ाकारी होता गया। इसके साथही और समझने मे अपनी असमर्थता के कारण जो कुछ मैं नहीं समझ सकता उसके और जो कुछ विना झूठ वोले या अपने को धोखा दिये समझा ही नहीं जा सकता उसके वीचकी रेखायें गहरी होती गई।

इन शकाओं और पीड़ाओं के वावजूद भी मैं सनातन ईसाई सम्प्रदाय को ग्रहण किये रहा। लेकिन जीवन के ऐसे सवाल उठते रहे जिनका निर्णय करना जरूरी था। कट्टर सनातनी चर्च इन पर जो निर्णय देता था, वह तो धर्म-निष्ठा के उन मूलाधारों के ही खि़लाफ़ था जिनपर मेरा जीवन खडा

था। इस कारण विवश होकर मुझे स्वीकार करना पड़ा कि कट्टर सनातनी सम्प्रदाय में रहकर सत्य की प्राप्ति करना असंभव है। इन सवालों में एक ख़ास सवाल इस कट्टर ईसाई सम्प्रदाय का अन्य ईसाई सम्प्रदायों के प्रति प्रकट होने वाला दृष्टिकोण और व्यवहार भी था। चूँकि धर्म में मेरी दिलचस्पी थी, इसलिए मैं अनेक सम्प्रदायों के अनुयायियों के सम्पर्क में आता रहता था। इसमे कैथलिक, प्रोटेस्टेण्ट, 'पुराने विश्वासी' (ओल्ड बिलीवर्स), सुधारवादी मोलोकंस (जो कर्मकाण्ड की अनेक विधियों के विरोधी थे)—मतलब सभी तरह के लोग थे। इनमें मुझे ऊँचे चरित्र के वहुतेरे ऐसे आदमी मिले जो सचमुच धर्मात्मा थे। मैं उनके साथ भाईचारा स्थापित करना चाहता था—उनको अपने बंधु-रूप में ग्रहण करना चाहता था। पर कट्टर सनातनी चर्च में स्थिति बिल्कुल विपरीत थी। जिस शिक्षा ने सबको एक धर्मनिष्ठा और प्रेम-बंधन में बाँधने का दावा किया था उसी शिक्षा के सर्वोत्तम प्रतिनिधियों ने मुझे बताया कि ये सारे आदमी असत्याचारी हैं, असत्य के बीच रह रहे हैं; उनके जीवन में जो शक्ति दिखाई देती है, वह शैतान का प्रलोभन-मात्र है और जो कुछ हमारे पास है बस वही सत्य है। मैंने यह भी देखा कि जो लोग हर बात में उनसे सहमत नहीं हैं या उनकी 'हाँ' में 'हाँ' नही कर सकते वे सब इन कट्टर सनातनियों द्वारा नास्तिक और पतित समझे जाते हैं। मुझे यह भी दिखाई पड़ा कि जो लोग उनके स्वीकृत बाह्य चिह्नों और प्रतीकों के द्वारा अपनी धर्मनिष्ठा नहीं प्रकट करते उनके प्रति ये लोग विरोध-भाव रखते हैं और यह स्वाभाविक ही है। पहला कारण तो उनकी यह मान्यता है कि तुम असत्य पर हो और केवल मैं ही सत्य पर हूँ, और इससे निष्ठुर बात एक मनुष्य दूसरे से कह नहीं सकता। दूसरा कारण यह है कि जो आदमी अपने बच्चों और भाइयों को प्यार करता हो वह उन लोगों के प्रति विरोध एवं शत्रुता का भाव रक्खे बिना नही रह सकता जो उसके बच्चों और भाइयो को झूठी धर्मनिष्ठा की ओर ले जाना चाहते हों। फिर पौराणिक ज्ञान जितना ही अधिक बढ़ता है, यह विरोध भाव भी उतनाही अधिक बढ़ता जाता है। तब मेरे

जैसे आदमी के लिए, जो प्रेम-द्वारा ऐक्य एवं मिलन मे सत्य की स्थिति मानता है, यह वात विल्कुल साफ़ हो गई कि धर्मविद्या ठीक उसी चीज का विनाश कर रही है जिसका निर्माण उसे करना चाहिए था।

जव हम देखते है कि प्रत्येक सम्प्रदाय दूसरे के प्रति घृणा का भाव रखता है, केवल अपने को ही सत्य का अधिकारी मानकर सन्तुष्ट है तो आश्चर्य होता है कि क्या ये लोग इतना भी नही देख सकते कि अगर दोनों के दावे एक-दूसरे के विरोधी है तो उनमे से किसी मे भी पूर्ण सत्य नही हो सकता और धर्मनिष्ठा मे पूर्ण सत्य होना चाहिए। तव मनुष्य मन को यों भुलावा देने की चेष्टा करता है कि कोई और वात भी होगी, इसका कुछ और मतलव होगा। मैंने भी यही समझा कि इसका कुछ और मतलव होगा और उस मतलव को पाने एवं समझने की कोशिश की। इस विषय पर जो कुछ भी मुझे पढ़ने को मिला, मैंने पढा और जिनसे भी सलाह-मशविरा कर सकता था, किया। किसी ने मुझे उसकी कोई व्याख्या नही सुझाई—सिवाय उस व्याख्या के जिसे मानने के कारण 'क' अपने को ही दुनिया मे सर्वश्रेष्ठ मानता है और 'ख' अपने को। हर सम्प्रदाय ने अपने सर्वोत्तम प्रतिनिधियो द्वारा मुझे कहा कि हमारा विश्वास है कि सिर्फ़ हमीं को सत्य प्राप्त है और दूसरे सव ग़लत रास्ते पर हैं और हम उनके लिए सिर्फ़ प्रार्थना कर सकते हैं। मै पुरोहितों, पादरियो, धर्माध्यक्षों, और विद्यावयोवृद्ध पण्डितों के पास गया, लेकिन किसी ने मुझे इसका मतलव नही वताया—सिवाय एक आदमी के जिसने इसकी पूरी व्याख्या मेरे सामने रक्खी और कुछ इस तरह रक्खी कि फिर आगे किसी से पूछने का मुझे साहस ही नही हुआ। मैंने कहा कि धर्मनिष्ठा की ओर आकर्षित होनेवाला प्रत्येक नास्तिक (और हमारी सारी तरुण पीढी कुछ इसी तरह की है) पहले यह सवाल करता है कि लूथर सम्प्रदाय मे या कैथलिक सम्प्रदाय मे सत्य क्यों नही है और कट्टर सनातनी सम्प्रदाय मे ही सारा सत्य क्यों है? आधुनिक युवक शिक्षित होने के कारण, किसानो की भॉति, इस वात से अपरिचित नहीं है कि प्रोटेस्टेण्ट और कैथलिक सम्प्रदाय भी इसी प्रकार ज़ोर के साथ कहते है कि उनकाही धर्मविश्वास

एकमात्र सच्चा है। ऐतिहासिक प्रमाणो को प्रत्येक धर्म या सम्प्रदाय इस तरह तोड-मरोड़कर पेश करता है कि वे इस सम्बन्ध में कुछ सिद्ध करने के लिए काफ़ी नही हैं। मैंने कहा कि क्या यह मुमकिन नही है कि धर्मशिक्षाओं को इससे ऊँचे और श्रेष्ठ ढंग पर ग्रहण किया जाय कि उसकी ऊँचाई से देखने पर ये सब विभेद और मतभेद दूर हो जायँ, जैसा कि सच्चे आस्तिकों के साथ होता भी है? हम जिस मार्ग पर चल रहे है, क्या उससे आगे नही बढ सकते? क्या हम दूसरे सम्प्रदायवालो से यह नही कह सकते कि फलॉ-फलॉ तात्विक बातो मे तो हमारे मत मिलते-जुलते है, तफ़सील की बातो मे भले न मिलें। तात्विक और ज़रूरी बातो को ग़ैर-ज़रूरी बातों पर श्रेष्ठता देकर हम एकता का अनुभव कर सकते है।

उस एक आदमी ने, जिसका ज़िक्र मै ऊपर कर चुका हूँ, मेरे विचारों का समर्थन किया पर मुझसे कहा कि अगर इस तरह की छूट दी जाती है तो धर्माधिकारियो पर यह कलंक लगता है कि उन्होने हमारे पूर्वजों के साथ विश्वासघात किया। इससे धर्म-भेद फैलता है, और धर्माधिकारियों का काम तो यूनानी-रूसी कट्टर सनातनी चर्च की पवित्रता की रक्षा करना है जिसे हमने पूर्वजो से हासिल किया है।

बस सारी बातें मेरी समझ में आ गई। मैं एक धर्म-निष्ठा की खोज कर रहा हूँ, जो जीवन का बल है, और वे लोग कुछ मानवीय ज़िम्मेदारियो को लोगो की निगाह मे सर्वोत्तम ढग से निभाने का प्रयत्न कर रहे है। और इन मानवीय मामलो की पूर्ति करते समय वे मानवीय (!) आचरण भी करते है। चाहे वे अपने ग़लती करनेवाले भाइयो पर करुणा रखने की कितनी ही बात करें और सर्वशक्तिमान ईश्वर के सिहासन से उनके लिए कितनी ही प्रार्थनायें करें, परन्तु मानवीय स्वार्थों की पूर्ति के लिए हिसा आवश्यक हो उठती है, सर्वदा उसका प्रयोग हुआ है, होता है और होता रहेगा। अगर दो धर्मों में से प्रत्येक सिर्फ़ अपने को ही सच्चा समझता है और दूसरे को झूठा मानता है तो फिर लोग दूसरो को सचाई की ओर खीचने के लिए अपने धर्म-सिद्धान्तों का प्रचार और उपदेश करते ही रहेगे। अगर उनके

सच्चे चर्च के अनुभवहीन बच्चों या अनुयायियों को गलत शिक्षा दी जाती है या गुमराह किया जाता है तो फिर चर्च के पास इसके सिवा क्या चारा रह जाता है कि वह ऐसी किताबें जला दे और जो आदमी उसके बच्चों को गुमराह कर रहा है, उसे हटा दे। ऐसे सम्प्रदायवादी के साथ क्या किया जाय जो सनातनी चर्च की राय में भ्रमात्मक धर्म-सिद्धान्त की आग में जल रहा है और जो जीवन के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामले, यानी धर्म की निष्ठा में, चर्च के बच्चों को गुमराह कर रहा है? ऐसे आदमी के साथ उसे जेल भेजने या उसका सिर काट लेने के सिवा और क्या व्यवहार किया जा सकता है? ज़ार एलेक्सिस माइखेलोविच के समय में लोगों को जला दिया जाता था यानी उन पर उस वक्त के सबसे कड़े दण्डविधान का प्रयोग किया जाता था, और आज हमारे वक्त में भी इस समय की सबसे कड़ी दण्ड-विधि यानी एकान्त कारावास का प्रयोग किया जाता है।

तब मैंने उन बातों पर ध्यान दिया जो धर्म के नाम पर की जाती हैं और भय एवं संताप से भर गया, और मैंने कट्टर सनातन ईसाई सम्प्रदाय को करीब-करीब बिल्कुल छोड़ दिया।

चर्च यानी धर्म-संस्था का दूसरा सम्बन्ध युद्ध और कत्ल (फाँसी)—विषयक जीवन के एक सवाल से था।

* उस वक्त रूस लड़ रहा था। और रूसी लोग, ईसाई प्रेम के नाम पर, अपने मानव-बन्धुओं को मारना शुरू कर चुके थे। इसके विषय में न सोचना असम्भव था और इस बात की तरफ़ से आँख मूँद लेना भी असम्भव था कि हत्या एक ऐसा पाप है जो हर धर्म के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध है। इतने पर भी हमारी फौजों की सफलता के लिए गिर्जों में प्रार्थनायें की जाती थीं और धर्मोपदेशक हत्या करने को धर्मनिष्ठा से ही पैदा होने वाला एक काम मानते थे। फिर युद्ध-काल की इन हत्याओं के अलावा,

* जब यह लिखा गया था तब ख़याल किया जाता था कि रूस से फाँसी की प्रथा उठा दी गई है।

युद्ध के वाद के झगड़ों टण्टों मे भी मैंने देखा कि चर्च के अधिकारियो, शिक्षकों और संन्यासियो ने ग़लती करनेवाले असहाय युवको की हत्या का समर्थन किया। मैंने ईसाई-धर्म मानने का दावा करनेवाले आदमियों के सब कृत्यो पर ध्यान दिया और मेरा दिल दहल गया।

: १६ :

बस मेरा सन्देह दूर हो गया और मुझे पूरी तरह यह विश्वास हो गया कि जिस धर्म को मैंने अगीकार कर रक्खा है, उसमे सब सत्य ही सत्य नही है। शायद ऐसी हालत मे पहले मैं कहता कि वह सब का सब झूठा है, लेकिन अब मैं ऐसा भी नही कह सकता था। सारी जनता सत्य का कुछ-न-कुछ ज्ञान रखती है, क्योंकि बिना उसके वह जी ही नही सकती। फिर वह ज्ञान मेरे लिए भी प्राप्य है, क्योकि मैने उसकी अनुभूति की है और उसके सहारे जिन्दगी के दिन भी बिताये है। यह सब था, पर अब मुझे कोई सन्देह नही रह गया था कि सत्य के साथ इसमे असत्य भी है। जो बातें पहले मुझे घृणाजनक प्रतीत होती थीं वे सब फिर स्पष्ट रूप मे मेरे सामने आई। यद्यपि मैंने देखा कि जिन झूठी बातो से मुझे घृणा होती है, उनका किसानो मे चर्च वा धर्म-सस्था के प्रतिनिधियों की अपेक्षा कम ही मिश्रण है। पर यह तो तब भी साफ़ हो ही गया कि जनता के धर्म-विश्वास मे सत्य के साथ असत्य भी मिला हुआ है।

पर सवाल उठता है कि सत्य कहाँ से आया और असत्य कहाँ से आया? सत्य और असत्य दोनों पवित्र कही जानेवाली परम्परा और धर्म-ग्रन्थों (Scriptures) मे मौजूद थे। सत्य और असत्य दोनो 'चर्च' (ईसाई-धर्म-सस्था) द्वारा लोगों को दिये गये हैं।

और पसन्दगी से या नापसन्दगी से मुझे इन ग्रन्थों का और इन परम्पराओं का अध्ययन और अन्वेषण करना पडा—उन्ही ग्रन्थों और परम्पराओ का जिनका अन्वेषण करने मे अभी तक मैं इतना हिचकिचाता और डरता था।

मै उसी धर्म-विद्या (Theology) की परीक्षा करने लगा जिसे एक दिन अनावश्यक कहकर मैंने तिरस्कारपूर्वक अस्वीकृत कर दिया था। पहले

जब मै चारों तरफ से जीवन की ऐसी अभिव्यक्तियो से घिरा था जो मुझे स्पष्ट और विवेकपूर्ण प्रतीत होती थीं तब मुझे यह (धर्मविद्या) अनावश्यक मूर्खताओं वा असंगतियों की एक मालिका-सी प्रतीत होती थी, अब मै केवल उन्हीं चीज़ों को फेंककर सुखी हो सकता था जो मेरे दिमाग़ मे न घुसती थीं। इसी शिक्षा पर धार्मिक सिद्धान्त का आधार है या कम-से-कम इसके साथ मैंने जीवन के अर्थ एवं प्रयोजन का जो एकमात्र ज्ञान प्राप्त किया है, उसका अभेद्य सम्बन्ध है। मेरे दृढ और पुराने मनको यह बात चाहे कितनी ही निरर्थक प्रतीत होती हो, पर यही मुक्ति की एकमात्र आशा थी। इसे समझने के लिए बडे ध्यान और सावधानी के साथ इसकी परीक्षा करने की ज़रूरत थी—उस तरह का समझना नही जैसा मैं विज्ञान की धारणाओ को समझता हूँ मैं उसकी खोज में नही हूँ और धर्मनिष्ठा के ज्ञान की विशेषताओं एवं विविधताओं को देखते हुए मै उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर भी नही सकता। मै हर चीज की व्याख्या या निरूपण नहीं चाहता। मै जानता हूँ कि सब वस्तुओ के प्रारम्भ की भाँति, सब वस्तुओं की व्याख्या वा निरूपण भी असीम मे निहित है। लेकिन मै इसे ऐसे ढग से समझना चाहता हूँ जिससे जो कुछ अनिवार्यत अबोध्य या अनिरूप्य है, उस तक मैं पहुँच सकूँ। जो कुछ भी अबोध्य है उसे मै मानना चाहता हूँ, इसलिए नही कि मेरे विवेक की माँग या कसौटी ग़लत है (वह बिल्कुल ठीक है और उससे अलग होकर तो मै कुछ भी समझ ही नही सकता) बल्कि इसलिए कि मै अपनी बुद्धि की सीमाओ को जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी बुद्धि एक सीमा तक ही जा सकती है। मै इस रीति से समझना चाहता हूँ कि जितनी भी बातें अबोध्य है वे सब स्वयं अपने को अनिवार्यत अबोध्य रूप मे मेरे सामने पेश करें—ऐसी चीज़ों के रूप मे नही जिनमे विश्वास करने के लिए मै विवशतापूर्वक बाध्य हूँ।

धर्मशिक्षा मे सत्य है, इसमे मुझे किसी प्रकार का सन्देह नहीं है, पर यह भी निश्चित है कि उसमे असत्य है और मुझे जानना चाहिए कि कौन-सी बात सत्य है, कौन-सी असत्य; मुझे सत्य और असत्य को अलग-अलग

करना चाहिए। इसी काम मे मै अपने को लगा रहा हूँ। मुझे धर्मशिक्षा मे क्या असत्य मिला, क्या सत्य मिला और किन नतीजों पर मैं पहुँचा, इसका ज़िक्र मै आगे करूँगा, जो अगर कुछ महत्व का हुआ और किसी ने चाहा तो शायद आगे कभी कहीं प्रकाशित होगा।

१८७९

एक स्वप्न

ऊपर के अध्याय मैंने लगभग तीन साल पहले लिखे थे जो छापे जायँगे।

थोड़े दिन पहले की बात है कि मैं इनको फिर से देख कर ठीक कर रहा था और उस विचारशैली और अनुभूतियों की तरफ़ लौट रहा था, जिनके बीच मैं इनको लिखते वक्त रहा था। मुझे एक सपना दिखाई पड़ा। मैंने जो कुछ अनुभव किया था और जो कुछ बयान किया था, उसको इस स्वप्न ने घनीभूत और संक्षिप्त रूप में व्यक्त कर दिया। मेरा ख्याल है कि जिन लोगो ने मुझे समझा है, उनके लिए इस स्वप्न को कह देने की ज़रूरत है क्योंकि इस सपने को सुनकर उनके दिमाग़ में वे सब बातें ताज़ी हो जायँगी जिनको मैंने इतने विस्तार से पहले कहा है। सपना यह था

मैंने देखा कि मैं पलंग पर पड़ा हूँ। मैं न आराम मे था, न तकलीफ़ मे मै पीठ के बल लेटा हुआ था। पर मैंने सोचना शुरू कर दिया कि मै कैसे और किस चीज़ पर लेटा हूँ—; ऐसा सवाल इसके पहले कभी मेरे मनमे पैदा नही हुआ था। मैंने अपने पलंग की तरफ़ ध्यान दिया और देखा कि मै झूलन और कमानीदार पलंग पर लेटा हुआ हूँ। पलंग के कोनों से झूलन की तीलियाँ लगी है। मेरे पाँव एक तीली (सस्पेंडर) पर हैं और जंघे की पिंडलियाँ दूसरी तीली पर हैं। पाँवों को आराम नहीं मिल रहा था। मुझे इसका ज्ञान-सा था कि वे सस्पेंडर खिसकाये जा सकते हैं। मैंने उनमे से जो सबसे दूर था उसे धकेलकर पाँव के विस्तार के अनुरूप कर दिया—शायद मैंने सोचा कि यह ज़्यादा आरामदेह होगा। लेकिन वह मेरे धक्के से ज़रूरत

से ज़्यादा आगे चला गया था और मैने उस तक फिर अपना पॉव पहुँचाना चाहा। इस प्रयत्न में जॉघ की पिडलियों के नीचे जो तीली थी वह भी खिसक गई और मेरे पॉव अधर मे झूलने लगे। मैने अपने सारे शरीर को परिचालित करके आराम के साथ लेटने की कोशिश की। मुझे पूरा विश्वास था कि मै तुरन्त ऐसा कर सकता हूँ, लेकिन मेरे उठने मे कुछ ऐसी गड़वड हुई कि मेरे नीचे की और भी तीलियॉ खिसककर एक दूसरे से उलझ गई और मैंने देखा कि सारा मामला ही विगडता जा रहा है · मेरे शरीर का सारा अधोभाग खिसककर नीचे लटक रहा था, यद्यपि मेरे पॉव ज़मीन को नही छू रहे थे। मै सिर्फ़ अपनी पीठ के ऊपरी हिस्से के सहारे लटक रहा था। इससे न सिर्फ़ तकलीफ़ हो रही थी, वल्कि मै डर भी गया था। तभी मैने अपने तई किसी ऐसी वात के वारे मे सवाल किया जिसका पहले मुझे ख़याल ही नहीं हुआ था। मैने अपने से सवाल किया मैं कहॉ हूँ, और मै किस चीज़ पर लेटा हुआ हूँ ? मैने इर्द-गिर्द देखना शुरु किया। पहले मैंने उस दिशा मे निगाह डाली जिधर मेरा शरीर लटक रहा था और जिधर मुझे जल्द गिर पड़ने का अन्देशा था। मैंने नीचे की तरफ़ देखा मुझे अपनी ऑखों पर विश्वास न हुआ। मै ऊॅचे-से-ऊॅचे मीनारों और पहाड़ों की ही ऊँचाई पर नहा, वल्कि ऐसी ऊॅचाई पर था कि उसकी कल्पना भी मेरे लिए असम्भव थी।

मै यह भी समझ न सका कि उस निचाई मे, उस आधारहीन पाताल मे मुझे कोई चीज़ दिखाई भी देती है या नही जिस पर मै लटका हुआ हूँ और जिसकी तरफ़ मैं खिंचता जा रहा हूँ। मेरे हृदय की शिरायें सिकुड़ने लगी और मै डर गया। उस तरफ़ देखना भी भयकर था। जव मै उधर देखता तो मुझे महसूस होता कि अन्तिम तीली से भी खिसककर मै तुरन्त गिर जाऊंगा और नष्ट हो जाऊंगा। तव मैंने उधर नही देखा। लेकिन न देखना और भी वुरा था, क्योंकि मैं सोचने लगा कि जव मैं अन्तिम तीली से खिसककर गिरूँगा, तव क्या होगा। मैंने अनुभव किया कि भय के कारण मेरा आखिरी आश्रय—अन्तिम तीली—भी छूट रही है और मेरी पीठ

धीरे-धीरे नीचे की तरफ़ जा रही है। क्षण भर बाद ही मै गिर जाऊँगा। उसी समय मुझे यह ध्यान आया कि यह सब सच्चा नहीं हो सकता, यह सपना है। इससे जग जाओ! मैं अपने को जगाने की कोशिश करता हूँ पर वैसा कर नहीं पाता। अब मै क्या करूँ? अब मुझे क्या करना चाहिए? मै इस तरह अपने से पूछता हूँ और ऊपर की तरफ नजर दौड़ाता हूँ। ऊपर भी अनन्त आकाश फैला हुआ है। मैं आकाश की असीमता को देखता हूँ और नीचे की—पाताल की अतलता को भूलने की कोशिश करता हूँ और मै सचमुच उसे भूल जाता हूँ। नीचे की, पाताल की, अनन्तता मुझे डरा देती है, पर ऊपर की अनन्तता आकर्षित करती और मुझे वल देती है। मै देखता हूँ कि अतल के ऊपर अब भी अन्तिम तीलियाँ मुझसे छूटी नहीं है। जानता हूँ कि मै लटक रहा हूँ; लेकिन अब मै सिर्फ़ ऊपर की ओर देखता हूँ और मेरा भय दूर हो जाता है। जैसा कि सपनो मे होता है, एक आवाज सुनाई पड़ती है 'इसे देखो, यही बात है!' वस मैं अधिकाधिक अपने ऊपर अनन्त आकाश मे देखता हूँ और मुझे अनुभव होता है कि मैं शान्त एव स्थिर हो रहा हूँ। जो कुछ घटना घटी है वह सब मुझे याद है और भी याद है कि किस तरह वह सब हुआ; कैसे मैंने अपने पॉव बढ़ाये, कैसे मै खिसककर टॅग गया, मैं कितना डर गया था और किस तरह ऊपर देखने के कारण भय से मेरी रक्षा हुई। तब मै अपने से पूछता हूँ क्या मैं इस वक्त इसी तरह नहीं लटक रहा हूँ? मैं इर्द-गिर्द देखने की जगह अपने सारे शरीर से उस आश्रय-खण्ड का अनुभव करता हूँ, जिस पर मैं पड़ा हुआ हूँ। मैं देखता हूँ कि अब इस तरह लटका हुआ नहीं हूँ कि गिर पड़ूँ, बल्कि दृढतापूर्वक स्थित हूँ। तब मै फिर अपने से पूछता हूँ कि मैं किस प्रकार स्थित हूँ? मैं चारो ओर टटोलता हूँ; इधर-उधर नजर दौड़ाता हूँ और देखता हूँ कि मेरे नीचे, मेरे धड के नीचे भी एक तीली है और जब मै ऊपर की ओर देख रहा हूँ तब इस पर सुरक्षित रूप मे स्थित हूँ और सिर्फ़ यही तीली पहले भी मुझे थामे हुए थी। तब, जैसा कि सपनो मे होता है, मैं अपने को स्थिर रखने वाले साधन की बनावट की कल्पना

करता हूँ। यह एक बड़ा स्वाभाविक, समझ में आने लायक और अचूक साधन है—यद्यपि जगे हुए आदमी के लिए इस बनावट का कोई मतलब नही है। अपने स्वप्न मे मुझे आश्चर्य का अनुभव भी हुआ कि इस बात को मै और पहले ही क्यो न समझ पाया? मालूम पडा कि मेरे सिर के ऊपर एक खंभा भी है और उस पतले खंभे की सुरक्षितता मे कोई सन्देह नही किया जा सकता, यद्यपि उसको आश्रय वा सहारा देने वाली कोई दूसरी चीज़ नही है। उस खंभे से एक दोहरा फंदा नीचे लटक रहा है और यदि मै उस फंदे के बीच में अपने शरीर को ठीक तरह से रक्खूँ और ऊपर देखता रहूँ तो गिरने का कोई अन्देशा ही नही हो सकता। यह सब मुझे स्पष्ट दीख रहा था। मैं प्रसन्न और स्थिर था। मुझे जान पडा कि कोई मुझसे कह रहा है 'देखो, इसे याद रखना।'

बस, मै जग गया।

१८८२

मेरे संस्मरण

भूमिका

मेरे मित्र पी० वीरुकोव ने मेरी पुस्तकों के फ्रांसीसी संस्करण के लिए मेरी जीवनी लिखने का बीड़ा उठाया तो उन्होंने मुझसे अपने जीवन के सम्बन्ध में ज़रूरी बातें लिख भेजने का अनुरोध किया।

उन्होंने जो अनुरोध किया था, उसे मैं पूरा करना चाहता था, इसलिए मैं मन-ही मन अपनी जीवनी का एक खाका बनाने लगा। स्वभावत पहले-पहल मुझे अपने जीवन की अच्छाइयाँ ही याद आईं और उनमें मैंने एक चित्र में रंग भरने के समान अपने चरित्र और कार्यों की बुराई को जोड़ भर दिया। परन्तु अपने जीवन की घटनाओं पर अधिक गम्भीरता से विचार करते हुए मैंने देखा कि ऐसी जीवनी यद्यपि सर्वांश में गलत न होगी, परन्तु वह जीवन पर ग़लत प्रकाश डालने और ग़लत रूप में रखने के कारण—ऐसे रूप में, जिसमें अच्छाइयों पर तो प्रकाश डाला गया है, परन्तु बुराइयों की ओर से या तो आँखें ही मूँद ली गई हैं, या उनको ढकने का प्रयत्न किया गया है,—ग़लत होगी। और जिस समय मैंने अपने दोषों को जरा भी छिपाये बिना सारी बातें सच्ची-सच्ची लिखने का विचार किया, उस समय मैं ऐसी जीवनी से पड़नेवाले प्रभाव की कल्पना करके काँप उठा। उसी समय मैं बीमार पड़ गया।. बीमारी के समय बिस्तर पर पड़े पड़े मेरे विचार जीवन की पिछली घटनाओं पर केन्द्रित हुए। वे सस्मरण वास्तव में कँपा देनेवाले थे। उस समय मुझे बिल्कुल वैसा ही अनुभव हुआ जैसा कि पुश्किन ने अपनी कविता "रिमेम्बरेन्स" (स्मृतियाँ) में वर्णन किया है और जिसका भावार्थ यह है

ये पंक्तियाँ सन १९०२ में लिखी गई थीं जब टॉल्स्टाय एक लम्बी और भारी बीमारी से स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे।

जब हम प्राणियों के लिए शोरगुल भरा दिन शान्त हो जाता है
और जब नगरों की सुन्सान सड़कों पर रात की अर्द्धपारभासक एवं भूरी
छाया का आगमन होता है,
जब दिन की मेहनत का प्रसाद—निद्रा दुनिया पर उतरती है,
तब सारी रात के उस अनिवार्य अवकाश-काल मे,
गहरे मौन के बीच मेरे लिए वह समय आता है
जब निद्राहीन पीड़न की लम्बी और सूनी घड़ियाॅ आहिस्ता-आहिस्ता
रेंगती है।
मेरे दिल मे पश्चात्ताप की अग्नि ज़ोरो से धधकती है,
मेरा मन खौल रहा है और मेरे थके और दुखते सिर मे,
न जाने कितने तीखे विचारो की भीड़ लगी है।
और अपयशपूर्ण एवं लज्जाजनक पुरानी स्मृतियाॅ नीरवता मे कष्ट के
साथ अपना बोझीला चक्र चलाती है।
मै घृणा और निराशापूर्वक अपने जीवन के इस वृत्त को देखता हूॅ,
मैं अपने को शाप देता, कोसता, ताड़ता हूॅ और बार-बार कॉप उठता हूॅ,
अनुतापपूर्ण ऑसू मेरी ऑखो से झर-झर गिरते है, पर वे मेरी दुःखपूर्ण
कहानी की पंक्तियो को हरगिज़ मिटा नही सकते।

इसमे मै सिर्फ़ आखिरी पंक्ति में ही इतना-सा परिवर्तन करना चाहता हूॅ कि दुःखपूर्ण के स्थान पर कलङ्कपूर्ण शब्द रख दिया जाय।

इन्हीं भावनाओ मे मैंने अपनी डायरी मे नीचे की पंक्तियाॅ लिखी

६ जनवरी १६०३

"इस समय मै नरक की यातनाओ का अनुभव कर रहा हूॅ। अपने पिछले जीवन की सारी बुराइयाॅ मुझे याद पड़ रही हैं, ये स्मृतियाॅ मेरा पीछा नही छोड्तीं और मेरे जीवन को विषाक्त बना रही है। लोग इस बात पर खेद प्रकट करते है कि मरने के बाद मनुष्य को अपने जीवन की घटनायें याद नही रहती। लेकिन यह तो बडे भाग्य की बात है, अगर मुझे अपने भावी जीवन मे वे सब बुरे काम (पाप) याद रहें, जो मैंने इस अबतक के जीवन

मे किये है, और जो इस समय मेरी अन्तरात्मा मे डंक मार रहे हैं, तो मुझे कितनी पीड़ा हो ? यह तो होही नहीं सकता कि मुझे अच्छी बातें ही याद रहें, क्योंकि अगर मुझे अपने पुण्यकार्य याद रहे तो अपने पाप-कार्य भी मुझे अवश्य याद रखने होंगे। यह कितने भाग्य की बात है कि मृत्यु के साथ-साथ सब पिछली बातें भूल जाती हैं और केवल एक प्रकार की चेतना शेष रह जाती है जो ऐसी मालूम होती है कि मानो वह अच्छे और बुरे संस्कारों से बनी एक वस्तु है, एक विषम भिन्न है, जिसे सम करने पर वह कम या अधिक, सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकती है।

हाँ, तो स्मृतियों का लोप हो जाना एक भारी आनन्द है। स्मृति के साथ तो सुखपूर्वक रहना असम्भव ही हो जाये। लेकिन उनकी याद भूल जाने पर तो हम एक नये जीवन मे साफ पट्टी लेकर प्रवेश करते है, जिस पर हम दुबारा अच्छा और बुरा लिख सकते हैं।

यह तो सच है कि मेरा सारा जीवन इस तरह भीषण रूप से बुरा नहीं था। उसके केवल २० वर्ष ही खराब थे। अपनी बीमारी के समय जब मैंने अपने पिछले जीवन का सिंहावलोकन किया, तब मुझे ऐसा मालूम पड़ा था कि यह युग बुराइयों से ही भरा पड़ा था, किन्तु बात ऐसी नहीं थी। इस अवधि में भी मेरे मनमें अच्छी भावनायें उठती थीं, परन्तु वे थोड़े समय बाद मिट जाती थीं और शीघ्र ही वासनायें उन्हे दबा देती थीं। इतने पर भी अपने जीवन का सिंहावलोकन करते हुए विशेषकर अपनी लम्बी बीमारी के समय मुझे यह साफ मालूम पड़ा कि यदि मेरी जीवनी उस तरह लिखी गई, जिस तरह कि अधिकतर जीवनियाँ लिखी जाती है, जिनमे मेरी बुराइयों और दोषों, अपराधों और नीच-कर्मों के सम्बन्ध मे कुछ भी न कहा गया हो, तो वह जीवनी झूठी होगी। अत. अगर मेरी जीवनी लिखी ही जाये, तो उसमें सारी बातें सच्ची-सच्ची प्रकट होनी चाहिए। ऐसी ही जीवनी चाहे उसे लिखने मे लेखक को कितनी ही शर्म क्यों न उठानी पड़े—पाठकों के लिए लाभप्रद हो सकती है। अपने जीवन पर इस दृष्टि से विचार करते हुए, और अच्छाई और बुराई

की दृष्टि से उसे देखते हुए मै इस नतीजे पर पहुँचा कि मै अपने जीवन को चार भागो में बॉट सकता हूँ। पहला, चौदह साल तक की आयु का भोला-भाला, काव्यपूर्ण और आनन्दमय (विशेषकर अगले सालों की तुलना में) बाल्यकाल, दूसरे, उसके बाद के भयानक २० वर्ष जो सिर्फ आकांक्षा, दुरभिमान तथा सबके ऊपर, कुवासनाओ मे व्यतीत हुए। तीसरे, मेरे विवाह से लेकर मुझमे आध्यात्मिकता का जन्म होने तक के १८ वर्ष जिन्हे ससारी दृष्टि से नैतिक कहा जा सकता है, अर्थात् वे १८ वर्ष, जिनमे मैने उचित रूप से और ईमानदारी से गार्हस्थ-जीवन विताया। यद्यपि इन वर्षों में मै अपने परिवार की हित-चिन्ता करने, अपनी सम्पत्ति बढाने, साहित्यिक-क्षेत्र मे उन्नति करने तथा सब तरह का आनन्द लूटने मे ही लगा रहा, परन्तु मैंने कोई ऐसा काम नही किया जिसकी समाज निन्दा करता हो या जिसे बुरा कहता हो। चौथे और अन्तिम काल में वे बीस साल शामिल है जिनमे मै रह रहा हूँ, जिनके भीतर ही मुझे आशा है कि मैं मर जाऊँगा। इसी जीवन की दृष्टि से, इसी को सामने रखकर मै अपने अतीत पर विचार करता हूँ और जिसमे केवल उन बुराइयो के बुरे प्रभावो को दूर करने के सिवाय, जिनका आदी मै पिछले सालो मे हो गया था, ज़रा भी परिवर्तन करना न चाहूँगा।

यदि ईश्वर ने मुझे ज़िन्दगी और शक्ति दी तो मै इन चारो कालो की बिल्कुल सच्ची कहानी लिखूँगा। मै समझता हूँ कि मेरे ग्रन्थो की बारह जिल्दो* मे जो कलापूर्ण बकवास भरी हुई है और जिसे लोग आवश्यकता से अधिक महत्व देते है, उसकी अपेक्षा यह जीवनी लोगो के लिए ज्यादा फ़ायदेमन्द साबित होगी।

अब मै यही काम करना चाहता हूँ। पहले-पहल मैं अपने बाल्यकाल

* उस समय, अर्थात् जनवरी १९०३ तक, टाल्स्टाय की वे रचनायें जिन्हे रूस में प्रकाशित करने की आज्ञा मिल चुकी थी, बारह भागो में प्रकाशित हो चुकी थी। धर्म, समाज की समस्यायें, युद्ध और हिंसा आदि पर लिखी पुस्तकें आम तौर पर सेन्सरों द्वारा दबा दी गई थी।

के आनन्दमय-जीवन के सम्बन्ध मे कुछ कहूँगा, जो मुझे विशेषरूप से आकर्षित करता है। उसके बाद, चाहे वह मेरे लिए कितना भी लज्जाप्रद क्यो न हो, मै अपने जीवन के दूसरे काल के २० वर्षों की भयानक कथा कहूँगा। उसके बाद मै तीसरे काल के विषय मे लिखूँगा, जो अन्य कालो की अपेक्षा कम रोचक है। अन्त मे अपने जीवन के चौथे काल के विषय मे कहूँगा, जबकि मेरी आँखे खुली, मैं जागा, मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ और जिसने मुझे जीवन मे सबसे बडी अच्छाई और प्रतिदिन निकट आती हुई मृत्यु की दृष्टि से आनन्दमय शान्ति दी।

अपने बाल्य-जीवन के सम्बन्ध मे मैंने जो कुछ लिखा है उसे पुनरुक्ति-दोष से बचाने के लिए मैंने दुबारा पढ लिया है। मुझे इस पर दुःख भी है कि इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है वह बहुत बुरा लिखा गया है और यदि इसे साहित्यिक भाषा मे कहें तो सच्चे हृदय से, ईमानदारी से नहीं लिखा गया। लेकिन इसका कोई उपाय भी नहीं था। क्योंकि पहली बात तो यह कि अपने बचपन का हाल लिखने के बजाय मैंने अपने बचपन के मित्रो का हाल लिखना सोचा था और इसके फल-स्वरूप उसमें मेरे और उनके जीवन की घटनाओ का एक बेजोड मिश्रण हो गया। दूसरे जिस समय यह लिखा गया, उस समय मेरी अपनी स्वतन्त्र वर्णन-शैली कोई भी न थी और मुझ पर दो लेखको स्टर्न (Sterne) और टॉफर (Topffer)* का बहुत प्रभाव था।

* रोडोल्फ टॉफर (१७९९–१८४६) स्विस उपन्यासकार और कलाकार।

मेरे संस्मरण

मेरी दादी पेलागेया निकोलेवना (टाल्स्टाय) उग्र अंधे राजकुमार निकोलस इवानेविच गोर्शकोव की लड़की थी, जिसने अपार सम्पत्ति जोड ली थी। दादी के सम्बन्ध मे मुझे जितना याद है, उससे मैं कह सकता हूँ कि वह थोड़ी बुद्धि की औरत थीं और उनकी शिक्षा भी थोडी ही हुई थी। अपनी-सी दूसरी औरतो की तरह वह भी रुसी भाषा की अपेक्षा फ्रेंच अच्छी तरह जानती थीं। यही उनकी शिक्षा की सीमा थी। पहले उनके पिता ने, फिर उनके पति ने, और बाद मे, जहाँतक मुझे याद पड़ता है, उनके लडके ने उन्हें बिल्कुल बिगाड दिया था। लेकिन चूँकि वह कुटुम्ब के सबसे बुजुर्ग सदस्य की पुत्री थीं, इसलिए सभी उनका सम्मान करते थे।

मेरे दादा (उनके पति) की भी मुझे इतनी ही याद है कि वह भी मामूली बुद्धि के बडे नम्र, हँसमुख और केवल उदार ही नहीं, बल्कि बडे उडाऊ, लेकिन साथ ही बडे विश्वासी और श्रद्धालु भी थे। बेलेव्स्की जिले मे पॉल्येनी (यासनाया पोल्याना नहीं) नामक स्थान मे उनकी जागीर पर बहुत दिनों तक जल्सों, दावतों, नाटकों, नाच-गानों और पार्टियों की धूम रही। लेकिन इन सबके कारण और बड़े-बड़े दाव लगाकर खेल खेलने की आदत होने और हरएक आदमी को कर्ज या दान देने के लिए हमेशा तैयार रहने और बाद मे घरेलू परिस्थितियों की वजह से अपनी पत्नी की सम्पत्ति पर भारी कर्जा हो जाने के कारण यह सब धूम-धाम मिट गई। उनके पास पेट भरने को भी कुछ न रहा और अन्त मे उनको कज़ान के गवर्नर के पद के लिए अर्जी देनी पड़ी और उस

---

* टाल्स्टाय ने अपनी आत्मकथा लिखने के विचार को कभी कार्यरूप में परिणत नहीं किया। अपने संस्मरणों के बाद, जो सन् १८७८ में प्रकाशित हुए थे, उन्होंने कुछ बड़े सुन्दर अंश लिखे हैं, जो यहाँ दिये जाते हैं।

पद पर काम स्वीकार करना पडा। यह पद ऐसा था जो उनके जैसे ऊँचे कुल और उच्च पदाधिकारियो से सम्बन्ध रखने वालो को मिलने मे कोई दिक़्क़त न हो सकती थी।

यद्यपि उस समय घूस लेना एक साधारण बात थी, लेकिन मुझे बताया गया कि शराब पर एकाधिकार रखनेवालो के सिवा उन्होंने किसी से घूस नहीं ली। यही नहीं, जब कभी उनके सामने इस तरह का प्रस्ताव किया जाता था, तो वह नाराज़ होते थे। लेकिन मुझसे यह भी कहा गया कि मेरी दादी, मेरे दादा को बिना बताये, रुपया ले लिया करती थीं।

कज़ान में मेरी दादी ने अपनी छोटी लडकी पेलागेया का विवाह यशकोव के साथ कर दिया था। उनकी बडी लडकी की शादी पीटर्सबर्ग के काउण्ट ऑस्टन-सेकन के साथ हो चुकी थी।

कज़ान में अपने पति की मृत्यु होने के बाद और मेरे पिता का विवाह हो जाने के बाद मेरी दादी यास्नाया पोल्याना मे मेरे पिता के साथ रहने लगीं, जहाँ उनके बुढापे के दिनो की मुझे अब भी अच्छी तरह याद है।

मेरी दादी मेरे पिता को और अपने पोतो अर्थात् हम भाई-बहनो को बहुत प्यार करती थीं और हमारे साथ अपना मनोविनोद कर लेती थीं। वह मेरी चाचियो से भी बहुत प्रेम करती थीं, लेकिन मै जानता हूँ कि वह मेरी माता को ज़्यादा नही चाहती थी, क्योंकि वह उन्हे मेरे पिता के लिए अच्छा नही समझती थीं। यही नहीं, पिताजी का मेरी माता के लिए जो बहुत ज़्यादा प्रेम था, वह भी उन्हें ठीक नहीं लगता था। नौकरो के साथ तो उन्हे कडा बर्ताव करने की ज़रूरत ही नही पडती थी, क्योंकि हरएक आदमी यह जानता था कि वह घर भर मे सबसे बड़ी है, इसलिए उन्हे खुश रखने की कोशिश करता था।

मास्को जाने और वहाँ रहने से पहले मुझे अपनी दादी की तीन बातें अच्छी तरह याद हैं। पहली बात उनका कपडे आदि धोने का तरीका है। वह अपने हाथों पर एक खास तरह के साबुन से बहुत से झाग उठा लेती थीं, जिन्हे मै समझता हूँ कि वही अकेली उठा सकती थी। जब वह

कपडे धोती थीं तो हमे खास तौर पर उनका कपड़े धोना देखने के लिए ले जाया जाता था। सम्भवत उनके साबुन के झागों पर हमारा खुश होना और अचम्भे से भर उठना देख उन्हे भी आनन्द होता था। उनकी सफ़ेद टोपी, उनकी जाकट, उनके बूढे सफेद हाथ, और उनपर उठे हुए असख्य झाग, तथा एक सन्तोषपूर्ण मुस्कान लिये हुए उनका सफ़ेद मुँह, मुझे आज भी याद है।

दूसरी बात अपने पिता के चपरासियों द्वारा बिना घोडे की पीली गाडी मे बैठकर पास के छोटे जंगल मे अखरोट बीनने जाना था, जिनकी उस साल इफरात से पैदावार हुई थी। (इसमे हम लोग भी अपने मास्टर फ़ीडर इवानोविच को साथ लेकर घूमने जाया करते थे।) उन घनी और पास-पास उगी हुई झाडियो की मुझे अब भी याद है जिनमे होकर मेरे पिता के चपरासी पेट्रश्का और मत्यूशा उस गाड़ी को, जिसमे मेरी दादी बैठी रहती थीं, खींचते और किस प्रकार वे अखरोट के गुच्छों से लदी हुई टहनियो को, जिनमे बहुत से पके हुए अखरोट अपने छिलको से निकल-निकल कर गिर रहे होते थे, उनतक झुकाते थे। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार मेरी दादी उन्हें तोडतीं और अपने थैले मे डालती जाती थी, और किस प्रकार हम बच्चे भी कुछ टहनियाँ झुकाकर उसी प्रकार खुश होते थे जिस प्रकार फ़ीडर इवानोविच मोटी-मोटी टहनियाँ झुकाकर हमे अपने बल से चकित कर देता था। हम चारों ओर से अखरोट बीनते थे और जब फ़ीडर इवानोविच टहनियो को छोड देता और वे फिर पहले जैसी हो जाती थीं, उस समय हम देखते थे कि अब भी बहुत से अखरोट उनमे लगे रह गये हैं, जिन्हे हमने नहीं देखा। मुझे याद है कि जंगल के खुले मार्ग मे कितनी गर्मी और वृक्षो की छाया मे कितनी ठडक होती थी। अखरोट की पत्तियों की तीखी गन्ध और किस प्रकार हमारी नौकरानियाँ उन्हे दाँतों से कडकडा कर खाती थीं, और किस प्रकार हम भी निरन्तर ताज़े और मधुर सफेद गूदे को खाते थे, यह सब बातें मुझे अब भी याद है।

हम अपनी जेबो मे, गोद मे और गाडी मे अखरोट भर लेते थे।

हमारी दादी हमें अन्दर बिठाती और हमारी तारीफ करती थी। हम घर किस प्रकार लौटते थे, और घर लौटने पर क्या होता था, यह मुझे जरा भी याद नहीं। मुझे तो सिर्फ़ दादी, अखरोट के जंगल का खुला मार्ग, अखरोट के वृक्षों की पत्तियों की तीखी गन्ध, हमारे दोनों नौकर, पीली गाड़ी तथा सूर्य, सबके मिश्रित आनन्दवाली भावना की याद है। मुझे ऐसा मालूम होता था कि जिस तरह साबुन के झाग वहीं हो सकते थे जहाँ मेरी दादी हों, उसी प्रकार झाड़ियाँ, अखरोट, सूर्य तथा अन्य चीजें भी वहीं हो सकती थीं, जहाँ मेरी दादी पीली गाड़ी में हों, जिसे पेट्रुश्का और मत्यूशा खींचते हों।

सबसे ज्यादा तो मुझे उस रात की याद है जो मैंने अपनी दादी के सोने के कमरे में लेव स्टीपेनिश के साथ बिताई थी। लेव स्टीपेनिश एक अन्धा कहानी सुनानेवाला बूढा आदमी था। वह एक दास था जिसे खरीदा ही इसलिए गया था कि वह कहानियाँ सुनाए। वह एक या दो बार पुस्तक से पढवाकर सुन लेने के बाद अन्धों की सहज स्मृति-शक्ति के साथ कहानियों को शब्दश: सुना सकता था।

वह रहता तो मकान के ही किसी हिस्से में था, लेकिन दिन भर दिखाई नहीं पड़ता था। शाम होते ही वह मेरी दादी के सोने के ऊपरवाले कमरे में आ जाता। यह एक नीचा और छोटा-सा कमरा था जिसमें कोई भी दो सीढ़ियाँ चढने पर आ सकता था। यह अन्धा उनके कमरे की खिडकी में बैठ जाता, जहाँ उसके लिए मालिक की थाली का बचा हुआ भोजन ला दिया जाता था। वहाँ वह मेरी दादी का इन्तज़ार किया करता था। उस दिन जब दादी के कमरे में रात बिताने की मेरी बारी थी, वह लम्बा गहरे नीले रंग का कोट पहने हुए खिड़की में बैठा खाना खा रहा था। मुझे उस क्षण की याद है जबकि मोमबत्ती बुझा दी गई और एक छोटा लैम्प सुनहरी मूर्तियों के सामने जलता छोड़ दिया गया। मेरी दादी, वही करामाती दादी, जो साबुन के आश्चर्यजनक झाग उठाया करती थीं, सिर से पैर तक सफेद कपड़े

पहने हुए, बर्फ के समान श्वेत बिछौने पर, सफ़ेद ही चादर ओढ़े और सिर पर सफ़ेद ही टोपी दिये तथा ऊँचे-ऊँचे तकिये लगाये लेटी थीं। उसी समय खिड़की से लेव स्टीपेनिश की शान्त और मीठी आवाज़ आई, "क्या आपकी आज्ञा है, मै शुरु करूँ ?" "हाँ, शुरु करो।" "प्रिय बहन, उसने कहा"—लेव स्टीपेनिश ने अपनी शान्त, साफ और गम्भीर आवाज मे अपनी कहानी आरम्भ की। "हमे उन सुन्दर और रोचक कहानियों मे से एक कहानी सुनाओ जिन्हे तुम इतनी सुन्दरता के साथ सुना सकती हो।" शहरज़ादी ने उत्तर दिया—"बडे शौक से। अगर आपके सुल्तान मुझे आज्ञा दे तो मैं राजकुमार कमरल्ज़मन की कहानी सुनाऊँ।" सुल्तान की स्वीकृति मिल जाने पर शहरजादी ने इस प्रकार अपनी कहानी आरम्भ की—"किसी राजा के एक ही लडका था ।" इसी प्रकार लेव स्टीपेनिश ने भी राजकुमार कमरल्ज़मन की कहानी उसी प्रकार अक्षरश कह सुनाई, जैसी कि वह किताब मे थी। मै न तो कुछ समझता था, न सुनता था। मै तो सफेद वस्त्रो मे अपनी दादी की रहस्यमयी मूर्ति और दीवार पर पडती हुई उसकी धुँधली छाया तथा बूढे लेव स्टीपेनिश की सफेद ज्योतिहीन आँखों में ही डूबा रहता था। उस वृद्ध को यद्यपि मै इस समय नहीं देखता, परन्तु उसकी खिड़की मे बैठी हुई मूर्ति की तसवीर, जिसके मुँह से कुछ अजीब शब्द निकल रहे थे और जो उस अँधेरे-से कमरे मे जिसमे केवल एक ही लैम्प टिमटिमा रहा था भार रूप मे मालूम होते थे, अब भी मेरी आँखों मे खिची हुई है। शायद मैं लेटते ही सो गया, क्योंकि इसके अतिरिक्त और कोई भी बात मुझे याद नहीं है। परन्तु सवेरे ही अपनी दादी के हाथो पर कपडे धोते समय साबुन के झागों को देखकर मुझे फिर आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता हुई।"

× × × ×

अपने नाना के विषय मे तो मुझे इतना याद है कि सेनापति का पद प्राप्त करने के कुछ ही दिन बाद पोटेम्किन की भतीजी और रखेली वारवरा एंगेलहार्ट से विवाह करने के लिए इन्कार कर देने पर वह निकाल दिये

गये। पोटेम्किन के इस प्रस्ताव पर उन्होंने उत्तर दिया—"पोटेम्किन किस बात से यह ख्याल करते है कि मै उनकी रखेली से शादी कर लूँगा ?"

राजकुमारी कैथरीन डिट्रीवना ट्रुवेटस्की से विवाह करने के बाद मेरे नाना उन्हीं की जागीर यास्नाया पोल्याना में (जो राजकुमारी को अपने पिता सर्जे फिडोरोविच से मिली थी) रहने लगे।

लेकिन राजकुमारी एक कन्या—मारया—को छोड़कर शीघ्र ही परलोक सिधार गई। अपनी उसी प्यारी-पुत्री और उसकी फ्रांसीसी सहेली के साथ मेरे नाना अपनी मृत्यु तक (सन् १८२१ तक) वहीं रहे। वह बड़ा कड़ा काम लेनेवाले मालिक बताये जाते थे, लेकिन मैंने कभी उनकी क्रूरता की एक भी घटना या नौकरों को उतना कठोर दण्ड देने की बात नहीं सुनी जितना कि उन दिनों दिया जाता था। मैं यह जानता हूँ कि उनकी जागीर पर ऐसी बातें होती थीं, लेकिन घर के और बाहर के दासों के, जिनसे मैंने कई बार इस विषय में प्रश्न भी किया, हृदय में उनकी महत्ता और चतुरता के लिए इतना सम्मान था कि मैंने अपने पिता की बुराई तो सुनी, लेकिन अपने नाना की बुद्धिमत्ता, प्रबन्ध-कुशलता, अपने घर तथा खेतों पर काम करनेवाले दासों के, विशेषकर घर में काम करनेवालों के, मामलों में उनकी अत्यधिक दिलचस्पी की सबके मुँह से तारीफ ही सुनी। उन्होंने घरेलू दासों के लिए काफी मकान बनवा दिये और इस बात पर भी हमेशा ध्यान रक्खा कि उन्हें पर्याप्त भोजन, वस्त्र और आमोद-प्रमोद का सामान मिलता रहे। छुट्टी के दिन वह उनके लिए झूलों, नाच-रंग (ग्रामीण-नृत्य) तथा आमोद-प्रमोद का भी प्रबन्ध करते थे।

उस समय के प्रत्येक बुद्धिमान भूमिपति के समान वह खेत पर काम करनेवाले दासों की भलाई और बढती के लिए भी बहुत चिन्तित रहते थे। उनके समय में ये दास इसीलिए फूले-फले कि मेरे नाना के बड़े पद पर होने के कारण पुलिसवाले उनका बड़ा आदर करते थे और इसीलिए दासों को अधिकारियों की ज्यादतियों से बच निकलने का अवसर मिल जाता था।

वह सौंदर्य के भी बहुत प्रेमी थे और यही कारण है कि उनके सारे मकान न सिर्फ अच्छे बने हुए और आरामदेह थे, बल्कि बहुत सुन्दर और सजे हुए थे। ऐसा ही सुन्दर व सुहावना वह बाग था जो उनके मकान के सामने था। शायद उन्हे संगीत से भी बहुत प्रेम था; क्योंकि उनकी अपनी एक छोटी, परन्तु सुन्दर संगीत-मण्डली थी, जो उनके और मेरी माता के लिए ही थी। बाग मे जहाँ नीबू के पेड़ो की कतारें मिलती थीं, एक बड़ा पेड़ खड़ा था जिसका तना इतना मोटा था कि तीन आदमी एक साथ उसके चारों ओर लिपट सकते थे। उसी पेड के नीचे संगीत-विशेषज्ञों के बैठने के लिए बेञ्चे और मेजे पड़ी हुई थीं। मेरे नाना पेड़ो की कतारो के नीचे घूमते और गाना सुनते थे। वह शिकार करना कभी सहन नहीं कर सकते थे, लेकिन फूलों और हरे पौधों के बड़े प्रेमी थे।

भाग्य-चक्र से एक दिन वह उसी बारबारा ऐञ्जिलहार्ट के सम्पर्क मे आये, जिसके साथ विवाह करने से इन्कार कर देने के कारण उनका सैनिक जीवन नष्ट हुआ था। उसने राजकुमार सर्जा फीडोरोविच गोलिटसिन से विवाह कर लिया था, जिसे इस विवाह के उपलक्ष मे सब प्रकार का मान, सम्मान और इनाम मिला। मेरे नाना, सर्जा फीडोरोविच और उसके परिवार और फलत बारबारा ऐञ्जिलहार्ट के इतने निकट सम्पर्क मे आये कि मेरी माता की सगाई बचपन मे ही गोलिटसिन के दो लड़कों मे से एक के साथ हो गई और दोनों राजकुमारों ने अपने-अपने परिवार के चित्र (जो उनके दासो द्वारा बनाये गये थे) परस्पर एक-दूसरे को दिये। गोलिटसिन परिवार के ये सब चित्र हमारे पास हैं। इनमे सर्जा फीडोरोविच का एक चित्र है, जिसमें वह सेंट-ऐण्ड्रू के आर्डर का रिबन पहने हुए है। एक सूरमा की पत्नी के रूप मे सुगठित और लाल केशोवाली बारबारा ऐञ्जिलहार्ट का चित्र भी है। परन्तु मेरी माता की सगाई विवाह-रूप मे परिणत न होनी थी, क्योंकि राजकुमार विवाह से पहले ही तेज बुखार के कारण परलोक सिधार गये।

× × × ×

माताजी की मुझे ज़रा भी याद नहीं। जिस समय मैं डेढ़ साल का था उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। पता नहीं कैसे उनका कोई चित्र भी सुरक्षित नहीं रक्खा गया, अत मैं उनकी मूर्ति की कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन यह भी अच्छा ही हुआ, क्योंकि अब मेरे मनमें उनकी कल्पना केवल आध्यात्मिक है और मैं जितना भी कुछ उनके विषय में जानता हूँ, वह सुन्दर है। मैं समझता हूँ कि मेरी यह धारणा इसलिए नहीं बनी है कि प्रत्येक आदमी ने, जिसने उनके विषय में कुछ भी कहा, उनकी अच्छी बातें ही कहीं, बल्कि इसलिए कि उनमें वास्तव में कुछ ठोस गुण और अच्छाइयाँ थीं।

मेरी माता सुन्दरी तो नहीं थी, परन्तु अपने समय की दृष्टि से वह अच्छी पढी-लिखी थीं। रूसी भाषा के साथ (जिसे वह उस समय की प्रथा के विरुद्ध भी शुद्ध लिख सकती थीं) वह फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी और इटालियन चार भाषायें जानती थीं और मैं समझता हूँ कि कला के लिए भी उनके हृदय में अवश्य प्रेम होगा। वह पियानो बहुत अच्छी तरह बजाती थीं और जैसा कि उनके समय की स्त्रियों ने मुझे बताया कि वह बडी रोचक कहानियाँ सुनाती थीं और कहानी सुनते सुनाते कहानियाँ गढती भी जाती थीं। परन्तु उनके नौकरों के कथनानुसार उनका सबसे बड़ा गुण यही था कि यद्यपि उन्हें बड़ी जल्दी गुस्सा आ जाता था, लेकिन फिर भी उनमें आत्म-संयम बहुत था। उनका चेहरा गुस्से से तमतमा उठता था और वह चिल्लाने भी लगती थी, परन्तु उनकी नौकरानी के कथनानुसार उन्होंने कभी कोई अपशब्द मुँह से नहीं निकाला, वह कोई अपशब्द या गाली जानती ही न थीं।

पिताजी और उनके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ और मेरे सबसे बडे भाई निकोलेन्का के आचार-विचार की जो डायरी वह रखती थीं, वह मेरे पास है। जिस समय उनकी मृत्यु हुई उसकी (निकोलेन्का की) आयु ६ वर्ष की थी। मैं समझता हूँ कि शकल-सूरत में हममें से किसी के बजाय वह माताजी से अधिक मिलते-जुलते थे। उन दोनों का एक गुण मुझे बहुत प्रिय है। कम-से-कम उनके पत्रों से तो यही झलकता है कि मेरी माता में

यह गुण था और मुझे मालूम है कि यह गुण मेरे भाई मे तो था ही। उनमे यह गुण था कि दूसरे उनके प्रति क्या विचार रखते है, इसकी ओर से वह उदासीन रहते थे। उनमें लज्जा और संकोच तो इतना अधिक था 'कि वह अपनी मानसिक और नैतिक ऊँचाई तथा उच्चशिक्षा को भी दूसरो से छिपाने की कोशिश करते थे। वह अपने गुणो पर लज्जित होते से प्रतीत होते थे।

मेरे भाई में तो, यह आखिरी गुण मुझे साफ दिखाई देता था। उनके लिए तुर्गनेव ने लिखा है कि वह उन दोषो से परे थे, जो एक बडा लेखक होने के लिए जरूरी हैं।

मुझे याद है कि किस प्रकार एक वेवकूफ और नीच आदमी ने, जो गवर्नर का सहायक था, और जो मेरे भाई के साथ शिकार खेल रहा था, मेरे भाई की मेरे सामने ही खिल्ली उडाई, और किस प्रकार मेरे भाई ने मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया। उसमे भी वह निश्चय ही आनन्द अनुभव कर रहे थे।

माताजी के पत्रों मे भी मैंने यही गुण पाया है। शायद टाटिआना एले-क्ज़ेण्डोवना एर्गोल्स्की को छोडकर, जिनके साथ मैने अपना आधा जीवन विताया, और जो वास्तव मे अद्भुत नैतिक गुणवाली महिला थी, मेरी माता निश्चय ही मेरे पिता और उनके परिवार वालो मे नैतिक दृष्टि से सबसे ज्यादा ऊँची थी।

इसके अलावा इन दोनो में एक खास गुण और था, और वही दूसरे लोगो द्वारा अपनी निन्दा के प्रति उनकी उदासीनता का कारण था। वह गुण यही कि वह कभी दूसरों को दोष नहीं देते थे। कम-से-कम मेरे भाई मे तो, जिनके साथ मैंने आधा जीवन व्यतीत किया, यह गुण अवश्य था। किसी व्यक्ति के प्रति अपनी उदासीनता वह वहुत हलकी और मीठी चुटकी (व्यंग्य) तथा उसके साथ की वैसी ही हलकी और मीठी मुस्कराहट द्वारा व्यक्त करते थे। यही बात मैंने माताजी के पत्रों मे पाई है और उन लोगो के मुँह से भी सुनी है जो उन्हे जानते थे।

एक तीसरा गुण, जो मेरी माता को उनके आस-पास रहनेवाले साधारण आदमियो से ऊपर उठाता था, उनके पत्रो की सादगी और सचाई थी। उन दिनो बातो को बहुत बढा-चढाकर लिखने का रिवाज सा हो गया था। अपने परिचितो मे "अद्वितीय", "बेजोड़", "प्रशंसनीय", "पूजनीय", "मेरे जीवन को आनन्द" आदि सम्बोधन बहुत चल पड़े थे, और उनमें जितनी ज़्यादा अतिशयोक्ति होती थी, उतनी ही सचाई कम होती थी।

यह गुण तो मेरे पिता के पत्रो में भी पाया जाता है, लेकिन बहुत अधिक मात्रा मे नहीं। वह लिखते थे—"मेरी परम-मधुर संगिनी! मै हर समय तुम्हारे साथ रहने के आनन्द का ही स्वप्न देखता रहता हूँ।" इसमे मुश्किल से ही कुछ सचाई है। परन्तु मेरी माता सदा एकही प्रकार से—"मेरे अच्छे मित्र!" सम्बोधन करती थीं। अपने एक पत्र में तो वह साफ कहती है—"यद्यपि सच तो यह है कि जब आप यहाँ होते है, हम आपके साथ रहने का पूरा आनन्द नही ले सकते, परन्तु फिर भी आपके बिना दिन पहाड के समान लगते है।" पत्र के अन्त मे वह हस्ताक्षर भी उसी प्रकार किया करती थीं—"आपकी दासी— मेरी"।

माताजी का बाल्यकाल कुछ तो मास्को में और कुछ उस योग्य, गुणी और गर्व रखनेवाले व्यक्ति, अर्थात् मेरे दादा, वोलकोन्स्की के साथ गाँवो मे बीता। मुझे बताया गया कि वह मुझे बहुत चाहती थीं और मुझे 'मेरे प्यारे बेंजामिन' कहकर बुलाया करती थीं।

मै समझता हूँ कि उस व्यक्ति के प्रति जिनके साथ उनकी सगाई हुई थी, उनका प्रेम वैसाही काव्यमय प्रेम होगा, जैसा कि एक लड़की अपने जीवन मे केवल एक बार ही अनुभव करती है। पिताजी के साथ माताजी की शादी पिताजी और माताजी के सम्बन्धियो ने ही तय की थी। मेरी माता धनी थी, लेकिन यौवन का प्रथम आगमन समाप्त होचुका था और वह अनाथ हो चुकी थीं। पिताजी हँसमुख और ऊँचे कुल के प्रतिभाशाली युवक थे, परन्तु उनकी सारी सम्पत्ति उनके पिता इल्या टालस्टाय ने पूरी तरह से नष्ट कर दी थी। उसको उन्होंने इस तरह चोपट कर दिया था कि पिताजी

ने बाद मे उसे लेने से भी इन्कार कर दिया। मै समझता हूँ कि माताजी का पिताजी से गूढ प्रेम नहीं था। हाँ, वह उनसे पति के रूप मे और अपने बच्चों के पिता के रूप मे प्रेम करती थीं। जहाँतक मुझे मालूम है वह तीन-चार व्यक्तियो से ही विशेष प्रेम करती थीं। गोलिटसिन के मृत पुत्र से, जिनके साथ उनकी सगाई हुई थी, उनका विशेष प्रेम था। फिर उनकी विशेष मित्रता अपनी फ्रासीसी सहेली श्रीमती हेनीशीन के साथ थी, जिनके सम्बन्ध मे मै अपनी चाचियों के मुहँ से सुना करता था। वह मित्रता शायद बाद मे टूट गई थी। श्रीमती हेनीशीन ने मेरी माता के एक सम्बन्धी राजकुमार माइकेल ऐलेक्ज़ेण्ड़ोविच वोल्कॉन्स्की से विवाह कर लिया था, जो लेखक वोल्कान्स्की के पिता थे।

मेरे बडे भाई कोको (निकोलस) से तो वह बहुत ही ज़्यादा प्रेम करती थीं, और सवेरे से शाम तक वह जो कुछ करते, उसे एक डायरी मे रूसी भाषा मे लिखती जातीं और फिर उन्हें पढकर सुनाती थीं। इस डायरी से दो बातें साफ झलकती हैं। एक उन्हे अपने पुत्र को अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देने की भारी उत्कंठा थी, परन्तु वह स्वयं यह नहीं जानती थीं कि वह अच्छी-से-अच्छी शिक्षा कैसी हो सकती है या कैसी होनी चाहिए। वह उन्हे (उदाहरणार्थ) बहुत भावुक होने और जानवरो को ज़रा भी पीडा होते देख चिल्लाने लगने पर झिड़कतीं, क्योंकि उनके विचार से एक मनुष्य को दृढ होना चाहिए—कमजोर हृदय का नहीं। भाई साहब का दूसरा दोष, जो वह दूर करना चाहती थीं, उनकी लापरवाही, और शून्य चित्तता, विमूढता थी।

अपनी बुआओं से जो बात मुझे मालूम हुई और जिसे मै भी समझता हूँ कि ठीक ही होगी वह यह है कि वह मेरे प्रति भी प्रेम रखती थीं। इस प्रेम ने धीरे-धीरे कोको (मेरे बडे भाई निकोलस) का स्थान ले लिया, जो कि मेरे जन्म के बाद उनसे दूर हटते गये और पुरुषों के हाथ मे सौंप दिये गये। उन्हे तो किसी एक को प्रेम करना ही था, इसलिए एक के स्थान मे दूसरा आ गया।

माताजी का यही प्रेमपूर्ण चित्र मेरे हृदय-पटल पर अंकित है। वह मुझे विशुद्ध, महान और पहुची हुई मालूम हुई। अपने जीवन के मध्यकाल मे अनेक बार जब मै चारो ओर प्रलोभनो मे घिरा हुआ संघर्ष कर रहा था, मैने उनकी आत्मा से अपनी सहायता की प्रार्थना की और उस प्रार्थना ने मेरी बडी मदद की।

माताजी के पत्रो और उनके सम्बन्ध मे दूसरो के मुँह से सुनी हुई बातो के आधार पर मै कह सकता हू कि हमारे पिताजी के परिवार मे उनका जीवन सुखी और आनन्दमय था।

हम पाँच बहन-भाई थे। निकोलस, सजा, मित्री, मै और मेरी बहन मारिका (मारया) जिसकी पैदाइश के वक्त माताजी की मृत्यु हो गई थी। माताजी का ६ वर्षो का छोटा सा वैवाहिक जीवन बहुत सुखी और सन्तोषपूर्ण था। वह जीवन भरा-पूरा और साथ रहनेवालो के प्रति मेरी माता के प्रेम और मेरी माता के प्रति उनके साथ रहनेवालो के प्रेम से भरा हुआ था। उनके पत्रो से मालूम होता है कि उस समय उनके जीवन मे बहुत सूनापन था। हमारे निकट परिचितो, ओगरेव परिवारवालो और उन सम्बन्धियो के सिवा, जो घूमते-घामते उधर आ निकलते थे और कोई यास्नाया पोल्याना मे नही आता था।

मेरी माता का समय अपने बच्चो की देख-रेख मे, घर का प्रबन्ध करने मे, घूमने मे, शाम को मेरी दादी को उपन्यास सुनाने मे, रूसो की 'एमाइल' जैसी गम्भीर पुस्तकें पढने मे, जो पढा हो उस पर वाद-विवाद करने मे, पियानो बजाने मे और मेरी एक बुआ को इटालियन भाषा सिखाने मे जाता था।

प्राय सभी परिवारो मे ऐसे समय आते है, जबकि सब लोग आनन्द से रहते है और बीमारी या मृत्यु होती ही नही। मै समझता हूँ कि मेरी माता की मृत्यु तक हमारे परिवार मे भी ऐसा ही समय रहा। न तो किसी कि मृत्यु ही हुई, न कोई सख्त बीमार ही पडा और मेरे पिताजी की बिगडी हुई हालत भी बहुत-कुछ सुधर गई। हरएक आदमी हँसमुख,

प्रसन्न और कमल की तरह खिला रहता था। मेरे पिता हम सबका कहानियों और चुटकुलों से मनोरंजन किया करते थे। परन्तु मैंने वे अच्छे दिन न देखे, क्योंकि जब मैंने होश सँभाला, माताजी की मृत्यु हो चुकी थी और उनके शोक की गहरी छाप हमारे परिवार पर लग चुकी थी।

× × × ×

मैंने ऊपर जो कुछ भी लिखा है वह सुनी-सुनाई बातों और चिट्ठी पत्रियों के आधार पर लिखा है। अब मैं यह लिखूँगा कि उस समय के मेरे अनुभव क्या हैं और मुझे क्या-क्या बातें याद हैं। मै अपने बचपन की वे बातें नहीं लिखूँगा, जिनकी केवल धुँधली-सी स्मृति ही बाकी है और जिनमें मैं नहीं कह सकता कि क्या तो वास्तविक है और क्या काल्पनिक, बल्कि मै उस जगह से लिखना शुरू करूँगा, जहाँ से मुझे सब बातों, उन स्थानों और उन आदमियों की, जो बचपन से ही मेरे आस-पास रहते आ रहे थे, साफ़-साफ याद है। उन आदमियों मे स्वभावत पहला स्थान मेरे पिता का है। यह इसलिए नहीं कि उनकी मुझ पर कुछ छाप पड़ी है, बल्कि इसलिए कि उनके प्रति मेरी आदर-भावना बहुत ज्यादा रही है।

अपने बचपन ही मे वह अपने पिता के इकलौते लड़के रह गये थे। उनके छोटे भाई एलेन्का बचपन ही मे रीढ की हड्डी टूट जाने के कारण मर गये थे। सन् १८१२ मे, (जब नेपोलियन ने रूस पर हमला किया) मेरे पिता की आयु केवल १७ वर्ष की थी। माता-पिता के बहुत झिड़कने, मना करने, डराने और विरोध करने पर भी उन्होंने फ़ौज मे नौकरी कर ली। उस समय मेरी दादी का (जो स्वयं गोर्शकोव कुल की राजकुमारी थी) एक निकट सम्बन्धी राजकुमार एलेक्से इवानोविच गोर्शकोव युद्ध-मन्त्री था। उसका भाई ऐण्ड्रू इवानोविच युद्ध के लिए भेजी गई सेना का सञ्चालन कर रहा था। मेरे पिता इन्हीं के एडजूटेण्ट (सहायक) नियुक्त हुए। उन्होंने १८१३-१४ और १८१४ के युद्धों मे भाग लिया। उन्हें किसी सेना के साथ फ्रांस भेजा गया। वहाँ वह कैद कर लिये गये और उसी समय छूटे जबकि हमारी सेनाओं ने पेरिस में प्रवेश किया।

बीस वर्ष की आयु में मेरे पिता अनजान बच्चे नहीं रह गये थे, क्योंकि सेना में भर्ती होने से पहले १६ बरस की उम्र में माता-पिता ने एक दास-कन्या को उनकी रखेली बना दिया था। उस समय ऐसे सम्बन्ध युवकों के स्वास्थ्य के लिए वाञ्छनीय समझे जाते थे। उनसे उन्हें एक पुत्र मिशेन्का हुआ जो कोचवान बनाया गया। जबतक मेरे पिता जीवित रहे, मिशेन्का की हालत ठीक रही, परन्तु बाद में उसने अपने को चौपट कर लिया और जब हम भाई बड़े हो गये तब वह बहुधा हमारे पास सहायता माँगने आया करता। जब मेरा यह भाई, जो हमारे पिता से शकल-सूरत में हम सब भाइयों से अधिक मिलता-जुलता था, अपनी हालत खराब हो जाने के बाद हमसे १० या १५ रूबल प्राप्तकर जोकि हम उसे दे सकते थे, बड़ी कृतज्ञता दिखाता, उस समय मेरे मनमें जो व्यथा होती, वह मुझे अभी तक याद है।

युद्ध समाप्त होने पर पिताजी, जैसा कि उनके पत्रों से झलकता है, फौज की नौकरी से उकता चुके थे। फ़ौज की नौकरी छोड़कर अपने पिता के पास कज़ान लौट आये, जहाँ कि मेरे दादा गवर्नर थे। दादा की हालत बिल्कुल खराब हो चुकी थी। यहाँ मेरे पिता की बहन पेलागेया इलीनिश्ना, जिसका विवाह युश्कोव के साथ हुआ था, रहती थी। इसके थोड़े दिन बाद ही मेरे दादा कज़ान में मर गये और मेरे पिता के कन्धों पर उस जागीर का, जिस पर उसके मूल्य से कहीं अधिक कर्जा था, एक बूढ़ी माता का, जो विलासी जीवन बिताने की आदी थी, एक बहिन तथा एक और सम्बन्धी का भार छोड़ गये। माताजी के साथ उनका विवाह भी उसी समय तय हुआ। उसी समय वह कज़ान से यास्नाय पोल्याना आ गए, जहाँ ६ वर्ष बाद उनकी पत्नी अर्थात् मेरी माता की मृत्यु हो गई।

हाँ, तो मैं अपने पिता के विवरण पर ही फिर आता हूँ। यदि मैं उनके जीवन का चित्र अपनी आँखों के सामने खींचता हूँ तो मैं देखता हूँ कि वह मझोले कद, गठीले बदन, रक्तवर्ण के चुस्त मनुष्य थे। वह सदा प्रसन्नमुख रहते थे, परन्तु उनकी आँखें सदा शोक-मग्न रहती थीं। उनका मुख्य धंधा खेती और मुकदमेबाज़ी, विशेषत मुकदमेबाज़ी था। वैसे तो उस जमाने

मे हरएक को ही मुकदमेवाजी करनी पड़ती थी, लेकिन मेरे दादा के झगडो को सुलझाने के लिए पिताजी को खास तौर से वहुत मुकदमे लड़ने पड़ते थे। इन मुकदमो के कारण उन्हे अक्सर घर छोड़कर जाना पड़ता था। इसके अलावा वह वहुधा शिकार खेलने के लिए भी वाहर जाया करते थे। शिकार के समय उनके साथियों मे उनके मित्र किरिव्स्की (एक मालदार और प्रौढ अविवाहित सज्जन) ग्लेवोव और इस्लेनेव ही होते थे। अन्य जागीरदारो के समान मेरे पिताजी मे भी एक खास वात थी और वह यह कि घर के दासो मे से कुछ उनके मनचीते होते थे। दो दास पेट्रुस्का और मत्यूशा, जो वहुत सुन्दर, चतुर और होशियार शिकारी थे, उनके विशेष कृपापात्र थे। मेरे पिताजी जव घर पर रहते थे तो खेती का काम और वच्चो को रखने के साथ-साथ पढ़ते भी वहुत थे। उनका अपना पुस्तकालय भी था जिसमे फ्रास का उच्चकोटि का पुरातन साहित्य, ऐतिहासिक ग्रथ, प्राकृतिक इतिहास की पुस्तको पर वफन, और क्यूवियर तथा अन्य लेखको के ग्रन्थ थे। मेरी वुआ कहा करती थीं कि मेरे पिताजी का यह नियम था कि वह पुरानी कितावें पढे-विना नई किताव नहीं खरीदते थे। यद्यपि उन्होंने वहुत-कुछ पढा, तथापि यह मानना कठिन है कि उन्होंने 'क्रूसेड और पॅप्स के इतिहास' जो उन्होंने अपने पुस्तकालय के लिए प्राप्तकर रक्खे थे, सारे-के-सारे पढ लिये होगे।

जहॉतक मै समझता हूॅ, उन्हे विज्ञान से अधिक प्रेम नहीं था। उनका ज्ञान उनके उस समय के साधारण आदमियों के ज्ञान के वरावर ही था। ऐलेक्जेण्डर प्रथम के राज्यकाल के शुरु के समय, तथा १८१३, १८१४ और १८१५ के युद्धकाल के समय के वहुत से आदमियो के समान उन्हे उदार दल का तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह ठीक है कि आत्म-सम्मान की भावना के कारण ही उन्होने देखा कि ऐलेक्जेण्डर के प्रतिक्रियावादी राज्यकाल मे या निकोलस के अधीन काम करना उनके लिए सम्भव नहीं। वह अकेले ही नहीं, वल्कि उनके सव मित्र ही सरकारी नौकरियों से अलग रहते थे। वह तो निकोलस प्रथम के राज्यकाल मे

ही विद्रोही (फ्रॉण्डियर्स*) के समान समझे जाते थे।

मेरे बाल्यकाल भर मे और मेरी जवानी तक में भी हमारे परिवार का न तो किसी सरकारी अफ़सर से परिचय ही था, न किसी प्रकार का निकट सम्पर्क ही था। अपने बचपन मे तो मै इसके महत्त्व को न समझ सका। उस समय तो मै इतना ही जानता था कि पिताजी ने कभी किसी के सामने सिर नही झुकाया और अपनी मधुर, नम्र और अधिकतर व्यंग और कटाक्ष-भरी वाणी को कभी नहीं बदला। उनके आत्म-गौरव की यह भावना देखकर ही मेरा उनके प्रति प्रेम बढ गया और मुझे उन्हे देखकर अधिक प्रसन्नता होने लगी।

उनके पढने-लिखने के कमरे मे, मुझे खूब याद है, हम लोग रात को सोते समय उन्हे 'प्रणाम' करने अथवा सिर्फ खेलने जाते थे। उस कमरे मे वह दीवार के सहारे अपनी चमडे की बैठक पर बैठे रहते और हमारी पीठ ठोका करते थे; और कभी-कभी, जब वह दरवाज़े पर खडे अपने क्लार्क से या हमारे धर्म गुरु याज़ीकोव से (जो अधिकतर हमारे पास ही रहते थे) बातचीत करते होते, या पढ़ते होते तो हमे अपनी गद्दीदार बेञ्च के तकिये पर चढ लेने देते। उस समय हमें बड़ा आनन्द आता था। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार वह सीढ़ियो से नीचे उतरकर आते और हमारे लिए तसवीरें बनाते जोकि हमे कला का सर्वोच्च नमूना मालूम होती थीं। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार एक बार उन्होने मुझसे पुश्किन की कवितायें पढवाकर सुनी, वे मुझे बहुत अच्छी लगी और मैने उन्हे कण्ठस्थ कर लिया। वे कवितायें "समुद्र की ओर" "ओ मुक्त तत्त्व, जाओ-जाओ!" और "नेपोलियन से" है।

मै जिस हृदयस्पर्शी और मार्मिक ढंग से इन कविताओ को गाया करता था, वह उन्हे बहुत ही अच्छा लगता था। मुझसे ये कवितायें सुनने के बाद वह और याज़ीकोव, जो अक्सर ऐसे वक्त वहाँ होते थे, एक दूसरे

---

* फ्रॉण्डियर्स फ्रास में, उस समय जबकि लुई चौदहवे नाबालिग थे, एक पार्टी थी जो राजसत्ता का विरोध करती थी। उसको मिटाने के लिए फ्राडी की लड़ाई भी हुई थी।

की ओर मर्मभरी दृष्टि से देखते थे। मैं समझ जाता कि ये मेरे कविता पढ़ने के ढग मे कुछ अच्छाई समझते है, अत मै इस पर बड़ा खुश होता।

दोपहर के या रात के भोजन के समय उनकी व्यंग और विनोद-भरी बातें और कहानियाँ और किस प्रकार हम, हमारी दादी, हमारी बुआयें और सब बच्चे उन्हें सुनते और हँसते थे, मुझे अबतक याद हैं। मुझे उनकी नगर की यात्रायें भी याद है। जब वह अपना फ्रॉक-कोट और तंग मोहड़ी का पाजामा पहनते, उस समय कितने सुन्दर लगते थे। लेकिन कुत्तो के साथ शिकार के समय की मुझे सबसे ज़्यादा याद है। शिकार के लिए उनका जाना, हमारा भी उनके साथ घूमने जाना और किस प्रकार उनके जवान शिकारी कुत्ते उस लम्बी-लम्बी घास से जो कभी उनके पेट मे चुभ जाती और कभी बदन पर लगती, उत्तेजित हो उठते और पूँछ खड़ी करके चारों ओर भागते और किस प्रकार मेरे पिताजी उनकी तारीफ करते, ये सब बातें मुझे याद है। मुझे याद है कि किस प्रकार पहली सितम्बर को, शिकार की छुट्टी के दिन, हम सब गाड़ी मे बैठकर उस जंगल में गये जहाँ एक लोमड़ी लाई गई थी, किस प्रकार शिकारी कुत्तो ने उसका पीछा किया और किस प्रकार उन्होंने उसे किसी स्थान पर, जहाँ हम उन्हे न देख सके, पकड़ लिया। उसी प्रकार मुझे एक भेड़िये के अपने घर के पास लाये जाने और हम सब बच्चों के नगे पैर उसे देखने वहाँ जाने की भी बिल्कुल साफ याद है। वह भूरे रग का विशाल भेड़िया था और एक गाड़ी मे उसके पैर बाँधकर, बन्द करके उसे लाया गया था। वह गाड़ी मे चुपचाप लेटा था, लेकिन जो भी कोई उसके पास जाता उसकी ओर वह तिरछी निगाह से देखता था। बाग के पीछे एक जगह पहुँचने पर भेड़िये को बाहर निकाला गया और उसके पैर खोलकर दो-दो लकड़ियों की कमानी (टिकटी) से उसे ज़मीन पर दबाये रक्खा। लोगो ने उसके पैर की रस्सी खोलनी शुरू की। वह रस्सी से झगड़ने, उसे झंझोड़ने और दाँतों से काटने लगा। आखिर लोगो ने पीछे से रस्सी खोल दी और उनमे से एक चिल्लाया—'उसे छोड़ दो।' कमानियाँ उठा दी गई और भेड़िया भी उठ

बैठा। वह दस सैकण्ड तक चुपचाप बैठा रहा, उसके वाद लोग चिल्लाये और शिकारी कुत्तो को खोल दिया। वस फिर क्या था, भेडिया, कुत्ते, घुडसवार, शिकारी सव सामने का मैदान पार करके पहाड़ के नीचे तराई मे पहुँच गये। लेकिन भेडिया भाग गया। मुझे याद है कि इस पर पिताजी घर आकर नाराज़ हुए।

लेकिन मुझे मेरे पिता सबसे अच्छे उस समय लगते थे जब वह दीवार के सहारे एक वडे तख्त पर मेरी दादी के साथ पेशेन्स* खेलने के लिए ताश के पत्ते फैलाने मे उनकी सहायता करते। वह हरएक आदमी के प्रति नम्र और मृदु-भाषी थे, लेकिन मेरी दादी के प्रति तो खास तौर से विनम्र थे। मेरी दादी अपनी लम्वी ठोड़ी झुकाये और सिर पर एक झालदार टेढ़ी टोपी लगाये, तख्त पर बैठी रहतीं और ताश के पत्ते खोल-खोलकर सामने रखती जाती थी। बीच-बीच मे वह अपनी सोने की सुँघनी से चुटकी भर-भरकर सूँघती जाती थी।

मेरे पिताजी जव-जव दादी के साथ सोफ़ा पर बैठकर उसे पेशेंस खेलने में मदद किया करते थे, तव-तव की स्मृतियाँ सबसे अधिक मधुर हैं। एक वार, मुझे याद है, पेशेस खेल के दर्मियान में जबकि मेरी बुआयें ज़ोर-ज़ोर से पढ रही थीं, उनमें से एक को बीच मे रोका, एक आइने की तरफ़ इशारा किया और धीरे से कुछ कहा। हम सब उधर देखने लगे। वात यह थी कि एक नौकर टीखोन जो यह समझकर कि मेरे पिता दीवानखाने में होंगे, पढने के कमरे मे वहाँ रक्खे हुए एक बड़े तह होनेवाले तम्बाकू के थैले मे से तम्बाकू चुराने को चला जा रहा था। पिता ने उसे आइने मे देखा कि वह पंजे के बल चुपके-चुपके जा रहा था। बुआयें हँसने लगीं, दादी बड़ी देर तक न समझ सकीं, पर जब समझ गईं तो वे भी मुस्करा दीं। मैं अपने पिता से बहुत मुहब्बत रखता था, लेकिन वह मुहब्बत कितनी गहरी थी, यह तभी मालूम हुआ, जब वह मर गये।

* पेशेन्स ताश का एक खेल है जिसे एक आदमी अकेला ही खेलता है। बच्चे वहुधा अकेले बैठे-बैठे कोई-न-कोई खेल खेलते रहते हैं।

तख्त के पास एक आराम कुर्सी पर खुदाई के काम की वन्दूक बनाने वाली पेट्रोव्ना कारतूसो का पट्टा और एक तग और छोटी सी जाकट पहने बैठी रहती। अक्सर वह कातती रहती और रील को दीवार पर दे मारती, जिसकी चोट से दीवार पर निशान पड गये थे। यह पेट्रोव्ना एक व्यापारी स्त्री थी, जिसे मेरी दादी चाहती थीं। वह अक्सर हम लोगों के साथ रहती थी और दादी के तख्त के पास ही बैठा करती थी। मेरी बुआयें आराम-कुर्सी पर बैठी रहती और उनमे से एक ज़ोर-ज़ोर से पढती रहती थी। दूसरी आराम-कुर्सी पर पिताजी की प्यारी कुत्ती मिल्का ने अपनी जगह वना रक्खी थी, जिसके सुन्दर काली-काली आँखें और चितकवरा रंग था और वह वड़ी तेजस्वी कुत्ती थी, हम लोग भी कभी-कभी रात को प्रणाम करने जाते और कुछ देर के लिए वहाँ ठहर जाते।

× × ×

बचपन मे टब मे नहाने और कपडे मे बाँधकर* डाल दिये जाने के ये मेरे संस्मरण सबसे पहले के है। मैं उन्हे एक क्रम से तो नही लिख सकता, क्योंकि मुझे मालूम नही कि उनमे कौन-सा पहला और कौन-सा दूसरा है। उनमे से कुछ के विषयमे तो मुझे यह भी नहीं मालूम कि वे बातें स्वप्न मे हुई या जाग्रत अवस्था में। मैं लिपटा-लिपटाया पडा रहता, अपने हाथ फैलाने का प्रयत्न करता, परन्तु फैला नही सकता था। मै रोता और चिल्लाता। यह रोना-चिल्लाना मुझे स्वयं अच्छा नहीं लगता था, परन्तु मैं चुप भी नही रह सकता था। उस समय कोई—मुझे याद नहीं कौन—आता और मेरे ऊपर झुकता। यह सब बाते कुछ-कुछ अँधेरे मे होती थी। मुझे मालूम था कि वह दो ही आदमी हैं। मेरे रोने-चिल्लाने से वे भी विचलित होते, परन्तु जैसा कि मैं चाहता था, मुझे खोलते नही थे। अत मैं और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाता। वे तो यह समझते थे कि इस प्रकार मुझे बाँधे रखना आवश्यक है, परन्तु मैं इसे विल्कुल अनावश्यक समझता था और यही बात उन्हें

* रूस में यह प्रथा थी कि छोटे-छोटे बालकों को कपडे में इस प्रकार लपेट देते थे कि वह हिल-डुल न सके और हाथ-पैर न चला सके।

सिद्ध करके दिखाना चाहता था। अत मै ज़ोर-ज़ोर से रोने और चिल्लाने लगता था। यह चिल्लाहट स्वयं मुझे अप्रिय थी, परन्तु मै इसे रोक नहीं सकता था। मै इस अन्याय और अत्याचार का—मनुष्यों का नहीं, क्योंकि वे तो मुझ पर तरस खाते थे, वरन भाग्य का अनुभव करता और अपने ऊपर रोता था। लेकिन यह सब था क्या, इसके सम्बन्ध मे न तो मैं जानता हूँ और न कभी भविष्य में जानने की सम्भावना ही है कि आया उस समय मुझे बॉधकर डाला जाता था जबकि मै दूध पीता बच्चा ही था (और मै अपने हाथ छुडाने के लिए प्रयत्न करता रहता था) अथवा लोग मुझे उस समय भी बॉधकर डाल देते थे जबकि मै एक साल का हो गया था ताकि मै कोई फोडा-फुन्सी न खुरच डालूँ, अथवा यह एक ही अनुभूति है और इस एक ही अनुभूति मे अन्य बहुत से अनुभव भी आ मिले है, जैसाकि अधिकतर स्वप्नावस्था मे होता है। लेकिन हॉ, यह तो निश्चित है कि यह मेरे जीवन का सबसे पहली और सबसे अच्छी स्मृति है। मेरे हृदय पर इसकी जो छाप है, वह रोने-चिल्लाने की स्मृतिमात्र ही नही है, अपितु उन अनुभूतियो के पेचीदेपन और पारस्परिक विरोधिता की छाप है। मै स्वतन्त्रता चाहता हूँ, इससे किसी को नुकसान न पहुँचेगा, परन्तु सारी बात तो यह है कि मै, जिसे शक्ति प्राप्त करने की आवश्यकता है, कमज़ोर हूँ, जबकि वे बलवान है।

दूसरी स्मृति भी बड़ी सुखद है। मै एक टब मे बैठा हुआ हूँ। मेरे चारो ओर किसी चीज़ की, जिससे वे मेरा छोटा-सा शरीर रगड़ रहे है एक तरह की गन्ध फैल रही है जो अप्रिय नही है। मेरे विचार से वह चोकर है जो मुझे नहलाने के टब मे डाल दी गई है। उस चोकर की गन्ध व स्पर्श से जो सुन्दर व अभूतपूर्व संवेदना उठी उसने मुझे जाग्रत कर दिया और पहली बार ही मुझे अपने शरीर का, जिसकी छाती पर पतली-पतली हड्डियॉ साफ दिखाई दे रही थीं, चिकनी लकड़ी के गहरे रंग के टब का, धाय मॉ के खुले हाथो का, भाप उठते हुए और चक्कर खाते हुए गरम पानी का, छपछपाने की आवाज़ का, टब के गीले किनारों पर हाथ फेरने पर

उसकी चिकनाई का भान और बोध हुआ और ये सब चीज़ें मुझे अच्छी लगने लगीं।

यह सोचकर आश्चर्य और भय मालूम होता है कि तीन साल की आयु तक की (जबतक कि मैं माता का दूध पीता था और जबकि मैंने माता का दूध पीना छोड़ा और पहले-पहल घुटनों के बल चलना, कुछ बोलना और कुछ चलना सीखा ही था) मुझे उन दो बातों (अर्थात् नहाने और कपड़े मे बँधे पड़े रहने) के अतिरिक्त बहुत दिमाग़ खरोंचने पर भी कोई घटना याद नहीं आती। आखिर मैं इस ससार मे कब आया? मेरा जीवन कब आरम्भ हुआ? उस समय की, जिसकी मुझे एक भी घटना याद नही है, कल्पना कितनी सुखद है। लेकिन साथ ही और लोगो के समान मेरा हृदय भी यह सोचकर थर्रा उठता है कि मृत्यु के समय भी ऐसी ही अवस्था हो जायगी जबकि जीवन की किसी घटना की स्मृति नहीं रहेगी, जिसे शब्दो द्वारा व्यक्त किया जा सके। क्या मै उस समय जीवित नही था जबकि मैं देखना, सुनना, समझना, बोलना, स्तनपान करना, हँसना और इस प्रकार अपनी माता को प्रसन्न करना सीख रहा था? नहीं, मैं जीवित था और आनन्द मे रह रहा था। लेकिन क्या उस समय मेरे पास वे सब चीज़ें नहीं थीं जोकि अब मेरे जीवन का आधार हैं? क्या उस समय मैंने इतनी अधिक विभूति प्राप्त नहीं की जिसका सौवाँ भाग भी अपने बाद के सारे जीवन में फिर प्राप्त नहीं हुआ? पाँच साल के बालक से इस आयु तक मानों मैं एक कदम चला हूँ। जन्म के समय से पाँच साल की आयु तक बड़ा लम्बा रास्ता था, गर्भ मे आने के समय से जन्म होने के बीच एक लम्बी खाई थी, और गर्भ मे आने की पूर्व स्थिति से गर्भ मे आने का बीच अगम्य और अचिन्त्य है। तीन तत्व आकाश, काल, कारण व कार्य हमारी कल्पना के ही मूर्त रूप है। हमारे जीवन का सार इन कल्पनाओं से परे ही नहीं है अपितु हमारा सारा जीवन इन कल्पनाओं का अधिकाधिक दास होते जाना और फिर उनसे मुक्त होना ही है।

× × ×

टव के बाद जो तीसरा अनुभव आता है वह ईरीमीवना का है। 'ईरीमीवना' वह हौवा था जिससे लोग हम बच्चों को डराया करते थे। शायद वे बहुत समय से इस तरह हमें डराते रहे होंगे, परन्तु मुझे जो इसकी याद है, वह यों है : मैं अपने बिस्तरे पर पड़ा हूँ और रोज की तरह प्रसन्न हूँ। इसी समय मुझे पालने-पोसनेवालों में से कोई आता और एक नई-सी आवाज़ बनाकर मेरे सामने कुछ कहकर चला जाता। मैं प्रसन्न होने के साथ-साथ डर भी जाता। मेरे साथ मेरे कमरे में मेरे जैसा ही कोई और भी होता। सम्भवत वह मेरी बहन मारया थी। उसका पालना भी मेरे ही कमरे में था। मुझे याद है कि मेरे पालने के पास एक परदा भी पड़ा हुआ था। मैं और मेरी बहन दोनों इस अद्भुत घटना पर जो कि घटनेवाली है, प्रसन्न भी होते और डरते भी। मैं तकिये में छिप जाता और उसके नीचे से दरवाजे की ओर देखता। दरवाजों में से मैं कोई अद्भुत और प्रसन्नता देनेवाली वस्तु के आने की आशा रखता था। उसी वक्त कोई ऐसे कपड़े और टोपी पहने हुए आता जिसे पहले मैंने कभी न देखा था। मैं इतना तो अवश्य जान जाता कि यह व्यक्ति हमारा परिचित है (वह हमारी बुआ थी या धाय, यह मुझे याद नहीं) और वह किन्हीं बुरे बच्चों और ईरीमीवना के विषय में कर्कश स्वर में न जाने क्या कहता था। मैं सचमुच डर जाता और डर से और प्रसन्नता से किलकारियाँ मारता, परन्तु फिर भी उस डर में मुझे आनन्द आता और मैं यह नहीं चाहता था कि मुझे डरानेवाला व्यक्ति यह समझ जाये कि मैंने उसे पहचान लिया है।

इसी ईरीमीवना से मिलता-जुलता एक और अनुभव है और चूँकि वह इस अनुभव से अधिक स्पष्ट है, अत मैं समझता हूँ कि वह काफ़ी बाद का है। इसका आशय मैं आजतक नहीं समझ सका हूँ। इस घटना में हमारे जर्मन शिक्षक थियोडोर इवानिच का प्रमुख भाग है। किन्तु चूँकि उस समय तक मैं उनको नहीं सौंपा गया था, इसलिए मैं समझता हूँ कि यह घटना मेरी ५ साल की आयु के पहले की होगी। अपनी याद में

थियोडोर इवानिच के सम्पर्क मे आने का यह मेरा पहला अवसर था और यह घटना भी इतने पहले हुई कि इसमे भी मुझे थियोडोर के अतिरिक्त अपने भाइयो या पिता की जरा भी याद नहीं। यदि इस सम्बन्ध मे मुझे किसी का ज़रा भी खयाल है तो वह मेरी वहन का है और वह भी इसलिए कि वह मेरी ही तरह ईरीमीवना से डरती थी। इस घटना के साथ-साथ मुझे एक वात और याद है और वह यह कि हमारे मकान में एक ऊपर को मंजिल और थी। मै उस मंजिल मे कैसे पहुँचा, अपने आप गया अथवा कोई दूसरा आदमी मुझे ले गया, यह तो मुझे याद नहीं, लेकिन यह मुझे अवश्य याद है कि हममे से वहुतो ने वहाँ पहुँचकर एक-दूसरे का हाथ पकड़कर घेरा बना लिया। हमारे साथ कुछ स्त्रियाँ भी थीं, जिन्हे मै नहीं जानता। परन्तु हाँ, किसी भी प्रकार मुझे यह मालूम हो गया कि वे धोविनें थीं। हम सव गोल चक्कर मे घूमते और कूदते। थियोडोर ईवानिच वहुत ऊँचे-ऊँचे पैर उठाता और वडी आवाज से ज़मीन पर पटकता। मैने उसी समय यह महसूस किया कि यह वात गलत और खेल को विगाडनेवाली है। मैं उसे देखता और (शायद) चिल्लाने लगता। वस उसी वक्त सारा खेल खत्म हो जाता।

वस पॉच साल तक मुझे इतना ही याद है। इसके अलावा मुझे अपनी धायो, वुआओं, वहिनो, भाइयो, यहाँ तक कि पिताजी व अपने कमरो और अपने खिलौनो तक की भी याद नहीं। अपने वाल्य-जीवन की घटनाओ की अधिक स्पष्ट स्मृति तो उस समय से आरम्भ होती है, जवकि मै नीचे की मंजिल मे थियोडोर इवानिच तथा वडे-वड़े लड़कों के पास पुरुष-गृह मे आ गया।

जवकि मैं नीचे थियोडोर इवानिच और वडे लड़कों के पास आ गया, उसी समय जीवन मे पहली वार और इसीलिए अधिक तीव्रता से मुझे उस भावना का और उन धार्मिक आचरणो का अनुभव हुआ, जिसे कर्तव्य की भावना कहते है और जिनका पालन हरएक को करना पड़ता है। जन्म से ही जिन चीज़ों और जिन आदतों का मै आदी हो गया था, उन्हें छोड़ना

कठिन था। मै स्वभावत ही उदास रहने लगा, इसलिए नही कि मै अपनी धाय से, बहन से और बुआ से अलग हो गया वल्कि यह उदासी इसलिए थी कि मै अपने पालने, अपने परदे और अपने तकिये से बिछुड गया था। यही नही मै अपने उस नये जीवन से, जिसमें कि मैं प्रवेश कर रहा था, कुछ डरने-सा लगा। मै उस भावी जीवन के अच्छे अंश को ही देखने और थियोडोर के लाड़ और दुलार-भरे शब्दों मे विश्वास करने की कोशिश करता था। मैंने उस अपमान और घृणा के भाव की ओर से आँखें मूँद ली, जो मुझ सबसे छोटे लड़के के प्रति दूसरे लड़के दिखाते थे। मै इस बात को अपने मनमे बिठाने की कोशिश करने लगा कि एक बडे लडके का लड़कियो के साथ रहना शर्म की बात है और यह भी कि धाय आदि के साथ ऊपर की मंजिल में (अर्थात् रनवास मे) जीवन व्यतीत करना अच्छा नही है। परन्तु फिर भी मेरा मन सदैव उदास रहता था और मै जानता था कि मेरा भोलापन और आनन्द इस बुरी तरह नष्ट हो रहा है और अब वह फिर कभी प्राप्त न होगा। बस, आत्माभिमान और आत्म-गौरव तथा कर्तव्य-पालन की भावना ही ऐसी थी जिसने मुझे रोक रक्खा। इसी तरह भावी जीवन मे कोई नया काम आरम्भ करते समय किसी दुविधा में या धर्म-संकट मे पड़ जाने पर मैं इन्ही दो भावनाओ से किसी निश्चय पर पहुॅचता था। मुझे उस हानि पर, जिसकी मै पूर्ति नही कर सकता था, बड़ा दुःख होता था। यद्यपि मुझसे यह कहा गया था कि अब मुझे लड़कों के साथ रक्खा जाना चाहिए, परन्तु इस पर भी मै तो कभी यह विश्वास ही नही कर सका कि ऐसा कभी होगा। जो गाउन मुझे पहनाया जाता था उसमें एक पेटी भी कमर में बॉधने के लिए थी और मुझे ऐसा मालूम होता था मानो इस पेटी मे सदा के लिए ऊपर की मंजिल (जहॉ स्त्रियाँ रहती हैं अथवा यदि राजसी-भाषा मे कहे तो रनवास) से मेरा सम्बन्ध तोड़ दिया है। उस वक्त जिन सब व्यक्तियों के साथ मैं रह चुका था उनका ख़याल तो मुझे आया नही मगर वहॉ की एक मुख्य स्त्री का, जिसके वारे मे इसके पहले की कोई बातें मुझे याद नही है, ख़याल आया। वह महिला

थी टाशियाना एलेक्ज़ेण्ड्रोवना एर्गोल्स्की। मुझे उनका ठिगना व सुगठित शरीर, काले-काले केश, दयालु और नम्र स्वभाव अब भी याद है। उन्होंने ही वह गाउन मुझे पहनाया था और मुझे छाती से लगाकर चूमते हुए उन्होंने ही मेरी कमर में पेटी बॉधी थी। उस समय मैंने देखा कि वह भी मेरे जैसा ही अनुभव कर रही थी कि यह अवसर दु ख और बडे दु ख का अवसर है। परन्तु यह तो होता ही है। उसी समय जीवन मे पहली बार मैंने जाना कि जीवन कोई खेल नहीं वरन् गम्भीर वस्तु है।

× × × ×

मेरे माता-पिता के बाद, जिसका मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव पडा, वह मेरी बुआ टाशियाना ऐलेक्जेण्ड्रोव्ना ऐर्गोल्स्की है जिन्हें हम 'ऑण्टी' कहा करते थे। वह मेरी दादी के पीहर के नाते की कोई बहुत दूर की रिश्तेदार थीं। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद वह और उनकी बहन लीसा अनाथ हो गईं। लीसा ने बाद मे पीटर ईवानोविच टाल्स्टाय से विवाह कर लिया था। उनके कुछ भाई थे जिनके पालन-पोषण का प्रबन्ध उनके सम्बन्धियो ने किसी प्रकार कर दिया था। लेकिन चर्न ज़िले मे अपने क्षेत्रों में प्रसिद्ध, अभिमानी और प्रमुख महिला टाशियाना सीमीनोव्ना स्कूरेटोव और मेरी दादी ने दोनों लडकियो को शिक्षा देने के लिए ले जाने का निश्चय किया। उन्होंने कई पर्चियो पर उनके नाम लिखकर उन्हें मोड़कर एक देव-मूर्त्ति के सामने डाल दिया और उसकी प्रार्थना कर लाटरी उठाई। लीसा टाशियाना सीमीनोव्ना के हिस्से मे आई और दूसरी मेरी दादी के। हम उन्हे तेनिश्का कहकर पुकारा करते थे। उनका जन्म सन् १७९५ में हुआ था। उनकी आयु मेरे पिता के बराबर थी। उन्हें मेरी बुआओ के बराबर ही शिक्षा दी गई थी और घर मे सब लोग उन्हे प्यार करते थे। कोई उनसे नाराज़ तो हो ही नही सकता था, क्योकि वह दृढ, उत्साही और आत्म-त्याग करनेवाली, चरित्रवान महिला थीं। उनके चरित्र की दृढता एक घटना से साफ झलकती है जो हमे हाथ मे हथेली के बराबर जले स्थान का दाग़ दिखाकर सुनाया करती थीं। वे सब बच्चे म्यूकियस स्केवोला की कहानी सुना करते थे और यह कहा करते थे

कि जैसा उसने किया वैसा कोई नहीं कर सकता। तेनिश्का ने कहा, 'मैं भी वही काम करके दिखाऊँगी।' मेरे धर्म-पिता याजीकोव ने कहा, 'तुम वह काम नहीं कर सकती।' और उन्होंने तुरन्त एक रूल मोमबत्ती में गरम किया और जब वह जल गया और उसमे से धुँआ निकलने लगा तो उन्होंने कहा, 'लो, अब इसे अपने हाथ पर लगाओ।' तेनिश्का ने अपना खुला हाथ बढा दिया (उस समय लड़कियाँ आधी बाँहों का कपड़ा ही पहनती थी) और याजीकोव ने वह जलता हुआ रूल उनके हाथ पर दबा दिया। वह खीजी तो, परन्तु उन्होंने अपना हाथ पीछे न हटाया, और उस समय तक उफ़ न किया जबतक याजीकोव ने वह रूल हटा नहीं लिया। इस रूल के साथ ही उनके हाथ की चमडी भी उपड़ गई। जब घर के बडे आदमियो ने पूछा कि यह कैसे जल गया तो उन्होंने कहा कि यह मैने अपने हाथ से जला लिया है, क्योंकि मै भी यह देखना चाहती थी कि म्यूकियस स्केवोला को उस समय कैसा अनुभव हुआ होगा।

उनका और बातों मे भी यही हाल रहता था। वह दृढ रहती, परन्तु साथ ही आत्म-त्याग भी करती। घने, काले और घुँघराले बालो की गुथी हुई लटों, एकदम काली आँखो तथा प्रफुल्ल और उत्साह से भरी हुई मुखाकृति से वह बड़ी सुन्दर और आकर्षक मालूम पड़ती थी।

सम्भवत वह मेरे पिता को प्यार करती थी, परन्तु उन्होंने उनसे उस समय, जबकि दोनो जवान थे, विवाह नही किया। उन्होंने सोचा कि अच्छा हो यदि मेरे पिता मेरी धनी माता से विवाह करें। बाद मे (अर्थात् मेरी माता की मृत्यु के बाद) उन्होंने इसलिए उनसे विवाह नहीं किया कि वह उनके और पिताजी के तथा उनके और हमारे बीच के काव्यमय सम्बन्ध को बिगाड़ना नही चाहती थी। एक सुन्दर बस्ते में बँधे उनके कागज़ों मे सन् १८३६ की यानी मेरी माता की मृत्यु के ६ साल बाद की लिखी हुई निम्न पंक्तियाँ मिली है—

"१६ अगस्त १८३६। निकोलस ने मेरे सामने आज एक विचित्र प्रस्ताव रक्खा, वह यह कि मैं उससे विवाह कर लूँ और उसके बच्चो की

माता बन जाऊँ तथा उन्हे कभी न छोड़ूं। मैने पहला प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, लेकिन दूसरे को जीवन रहते निवाहने का वायदा किया है।"

इस प्रकार उन्होने लिखा, लेकिन उन्होने इस बात का हमसे या किसी और से कभी जिक्र नहीं किया। पिताजी की मृत्यु के बाद उन्होने उनकी दूसरी बात पूरी की। हमारी दो बुआयें और एक दादी थीं, जिनका हमारे ऊपर टाशियाना ऐलेक्ज़ेण्ड्रोव्ना से अधिक अधिकार था, फिर भी टाशियाना ऐलेक्ज़ेण्ड्रोव्ना का (जिन्हे 'ऑण्टी' कहने की हमारी आदत पड़ गई थी अन्यथा रिश्ते मे तो वह हमसे इतनी दूर थीं कि मैं उस सम्बन्ध की याद भी नहीं कर सकता) हमारे पालन-पोपण मे उनके (घायल हंस की कथा मे बुद्ध के समान) प्रेम के कारण ही उनका पहला स्थान था और हम यह मानते भी थे।

मै तो उनके प्रति अपार प्रेम मे उन्मत्त हो जाया करता था। मुझे याद है कि किस प्रकार एक बार जब मै पॉच वर्ष का था, ड्राइग रूम मे तख्त के ऊपर पीछे की ओर से हाथ डालकर उनसे लिपट गया और किस प्रकार दुलार और प्यार से उन्होने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैने भी उनका हाथ पकड़ लिया और उसे चूमने लगा और प्रेम मे मग्न होकर किलकारियाँ मारने लगा।

एक अमीर घराने की लड़की के समान ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। वह रूसी भाषा से फ्रांसीसी भाषा अच्छी लिख और बोल सकती थीं। पियानो भी बहुत सुन्दर बजाती थीं, परन्तु पिछले ३० सालों से उन्होने उसे छुआ तक नहीं था। उन्होंने उसे बजाना उसी समय शुरू किया जब मै बड़ा हो गया और मै भी पियानो बजाना सीखने लगा, कभी-कभी जब हम दोनों मिलकर गाते तो वह अपने मधुर स्वर, ठीक उतार-चढाव और ताल-स्वर मिले हुए गाने से मुझे चकित कर देती।

अपने नौकरो के प्रति वह बडी दयालु थीं। उनसे कभी नाराज़ होकर नहीं बोलती थी। उनको मारने और पीटने का तो विचार भी उन्हें सह्य नहीं था। फिर भी इतना मानती थी कि दास तो आखिर दास ही है और

उनके साथ मालकिनो जैसा वर्ताव करती थीं। वे दास उन्हे एक असाधारण मालकिन मानते थे और प्रत्येक दास उन्हे प्यार करता था। जब उनकी मृत्यु हुई और उनका शव अन्त्येष्टि-क्रिया के लिए गॉव में होकर ले जाया जा रहा था, उस समय सारे-के-सारे किसान अपने घरो से निकल आये और उनके लिए प्रार्थना करने का आदेश किया।' उनका एकमात्र विशेष गुण उनका प्रेम था, लेकिन वह प्रेम, जैसा कि मै चाहता था कि वह न होता, केवल एक ही आदमी अर्थात् पिताजी के प्रति था। उनका प्रेम उसी केन्द्र से सबके लिए फैलकर जाता था। हम यह अनुभव करते थे कि वह हमें हमारे पिता के कारण ही प्रेम करती है। वह उनके द्वारा ही किसी और को प्रेम करती थीं, क्योंकि उनका सारा जीवन ही प्रेम से बना हुआ था—प्रेममय था।

यद्यपि हमारे प्रति उनके प्रेम के कारण उनका हमारे ऊपर अधिक अधिकार था, लेकिन फिर भी हमारी बुआओ का हमारे ऊपर उनसे अधिक कानूनी अधिकार था और जब पेलागेया इलीनिच्ना हमे कजान ले जाने लगी, तो वह उनका अधिकार मान गईं। लेकिन इससे हमारे प्रति उनके प्रेम मे तिल मात्र भी अन्तर नहीं आया। यद्यपि वह अपनी बहन काउण्टेस ई० ए० टॉल्स्टाय के साथ रहती थीं, लेकिन वास्तव मे उनका मन हमारे यहॉ रहता था। और यथासम्भव जल्दी-से-जल्दी हमारे यहॉ लौट आती थीं। वह अपने जीवन के अन्तिम २० दिनों मे हमारे साथ यास्नाया पॉल्याना मे रहीं और यह मेरे लिए बडी प्रसन्नता की बात थी। लेकिन हम उस खुशी का मूल्य ऑकने मे असमर्थ थे, क्योंकि सच्ची खुशी तो शान्त होती है और हमे उसका ज्ञान तो क्या भान तक नहीं होता। मै उसकी कदर अवश्य करता था, लेकिन वह पर्याप्त नहीं थी। उन्हे अपने

* उस समय मृत व्यक्ति की आत्मा की शान्ति के लिए पादरियों को थोड़ी-सी दक्षिणा देकर प्रार्थना कराने की प्रथा तो थी, परन्तु किसानों द्वारा किसी महिला के लिए, जो कि उनके गाँव की मालकिन भी न हो, ऐसी प्रार्थनायें कराना असाधारण बात थी।

कमरे मे मर्तबानो मे मिठाई, अंजीर और सोठ पड़ी हुई मोटी रोटी और खजूर रखने का शौक था, और वह मेरे ऊपर विशेष कृपा होने के कारण ये चीज़ें मुझे दिया करती थीं। हृदय मे एक तीखी चुभन के बिना मै न तो इस बात को भूल ही सकता हूँ, न स्मरण ही कर सकता हूँ कि बार-बार इन चीज़ो के लिए रुपया माँगने पर मैने हर बार इन्कार ही कर दिया और वह सदा ठण्डी साँस खींचकर चुप हो गई। यह सच है कि मुझे स्वयं रुपये की जरूरत थी, लेकिन अब तो मुझे जब कभी भी यह याद आ जाता है कि मैने रुपया देने से इनकार किया तो उस समय मै सिहर उठता हूँ।

जब मेरा विवाह हो चुका था और वह भी कमजोर हो चली थीं, तब एक दिन की बात है हम सब उनके कमरे मे जमा हुए थे। मौका देखकर और पीछे को मुँह फेरकर (मैने उस समय देखा कि वह रोने ही वाली है) उन्होने कहा—"देखो, मेरे प्यारे बच्चे, मेरा कमरा अच्छा है और शायद तुम्हे इसकी जरूरत पड़े।" और उनकी आवाज़ काँपने लगी—"अगर मेरी इसी कमरे में मृत्यु हुई तो मेरी स्मृति तुम्हे सदा दुःख पहुँचायेगी, अत मुझे कोई और कमरा दे दो, ताकि मै इस कमरे मे न मरूँ।" मेरे प्रति उनका मेरे बचपन से ही, जबकि मैंने उन्हे समझा भी नहीं था, ऐसा ही प्रेम था।

मैं ऊपर ही कह चुका हूँ कि टाशियाना ऐलेक्ज़ेण्ड्रोव्ना का मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। उन्होंने मुझे पहलेपहल, बचपन मे प्रेम के आध्यात्मिक आनन्द का पाठ पढाया। यह शिक्षा उन्होने पुस्तको या उपदेशो द्वारा नहीं दी, बल्कि अपने सम्पूर्ण जीवन से उन्होने मुझे प्रेम से लबालब भर दिया।

मैने यह देखा और अनुभव किया कि उन्हे प्रेम करने मे कितना आनन्द आता है। मै स्वयं भी प्रेम के उस आनन्द को समझता था। दूसरी बात जो मैने उनसे सीखी वह शान्त और स्थिर जीवन का आनन्द था

× × × ×

ग्रीशा (जिसका जीवनके 'वचपन' अध्याय में उल्लेख है) एक विचित्र चरित्र था। इनमें से वहुत तरह के 'साधु' हमारे घर पर भी आते थे। मै उन्हे वडे आदर की दृष्टि से देखता था। इसके लिए मैं उन लोगों का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पाल-पोस कर वडा किया। यद्यपि उनमे कुछ ऐसे भी थे जो शुद्ध हृदय के नहीं थे और जिनके जीवन में किसी समय कमजोरियाँ थी, परन्तु उनके जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य विवेक-शून्य होते हुए भी वहुत ऊँचा था, और मुझे यह जानकर वडी प्रसन्नता है कि मैंने वचपन मे ही उनकी साधना की ऊँचाई को पहचान लिया। यह जान लिया कि वह कितने पहुँचे हुए हैं। वह उस समय मारकस औरिलिअस के इस कथन पर अमल कर रहे थे कि 'एक अच्छे जीवन के लिए अपमान सह लेने से वढ़कर संसार मे दूसरी चीज़ नही है।' अच्छे कामों की दूसरो से प्रशंसा कराने का लोभ इतना हानिकारक और अनिवार्य है कि हमे उन लोगो के साथ सहानुभूति दिखानी ही चाहिए, जो केवल प्रशंसा को ही टालने की चेष्टा नही करते, वल्कि अपमान को न्योता देते है। ऐसे ही साधुओं मे से एक मेरी वहिन की धर्ममाता मेरिया जेरासीमोव्ना, अर्द्ध-मूढ एवडोकीमुश्का तथा अन्य व्यक्ति थे जो अधिकतर हमारे घर आया करते थे।

और हम वच्चे इन साधुओं के भजन न सुनकर अपने माली के सहायक अकीम नामक मूर्ख आदमी के भजन सुना करते थे, जो गरमी के दिनो मे काम आने वाले दो कमरो के वीच वने एक वड़े कमरे मे गाया करता था। उसके भजन वास्तव मे हृदयस्पर्शी होते थे और मुझे चकित कर देते थे। इन भजनों में वह ईश्वर को एक जीवित मनुष्य के समान सम्बोधन करता और हृदय में पक्के विश्वास और धारणा के साथ कहता—'तुम मुझे अच्छा करनेवाले हो, तुम मुझे मुक्ति दिलाने वाले हो।' उसके वाद वह कयामत के दिन के सम्वन्ध मे भजन गाता कि किस प्रकार ईश्वर उस दिन न्याय और अन्याय को अलग करेगा और पापियो कीऑंखो में पीली रेत भर देगा।

मेरे भाइयों और वहिनों के अतिरिक्त उस समय मेरी ही उम्र की एक लडकी ड्युनेश्का टेमी अशोव भी हमारे घर मे रहती थी, और मुझे यह

बताना चाहिए कि वह कौन थी और किस प्रकार हमारे यहाँ आई। जब हम बच्चे थे तो उस समय हमारे घर पर हमारी बुआ यूराकोव के पति भी आया करते थे। उनकी काली मूँछ, गलमुच्छे और चश्मा हम बच्चों को अचम्भे मे डाल देते थे। दूसरे सज्जन मेरे धर्म-पिता एस आई याजीकोव थे, जिनके शरीर से हमेशा तम्बाकू की बदबू आया करती थी, और जिनके मुँह पर लटकती हुई चमडी की वजह से उनकी सूरत बड़ी भद्दी लगती थी। वह अजीब-अजीब तरह से मुँह को मोडा करते थे। इन दो सज्जनों तथा हमारे दो पड़ोसियो ओगरेव और इस्लेनेव के अतिरिक्त हमारी माता के (पीहर के रिश्ते के) एक और दूर के सम्बन्धी भी आया करते थे। यह एक धनी अविवाहित सज्जन थे। उनका नाम टेमी अशोव था। वह पिताजी को भाई कहकर पुकारा करते और उनके प्रति अगाध प्रेम रखते थे। वह यास्नाया पॉल्याना से ४० वर्स्ट * (लगभग २७ मील) की दूरी पर पीरोगोव नामक गाँव मे रहते थे। एक बार वह वहाँ से सूअर के छोटे-छोटे दूध-पीते बच्चो को ले आये। इनकी पूँछें गोल लिपटी हुई थीं। उन्हे नौकरो के कमरे मे एक बड़ी रकाबी मे रख दिया। मेरे मन में टेमी अशोव, पिरोगोव और सूअर के बच्चे तीनो की कल्पना एकही साथ उठती है।

इसके अतिरिक्त टेमी अशोव इसलिए भी हम बच्चो को अच्छे लगते थे कि वह पियानो पर उस बडे कमरेमे नाचनेकी एक गत (बस वह केवल वही एक गत बजा भी सकते थे) बजाते थे और हम सब बच्चों को उसपर नचाते रहते थे। हम पूछते कि यह कौन सा नाच है तो कहते इस गत पर सब तरह के नाच नाचे जा सकते हैं। हमलोग भी ऐसा मौका पाकर बडे प्रसन्न होते थे।

एक दिन एक जाडे की रात को चाय पीने के बाद हमें जल्दी ही अपने बिस्तरों पर जा लेटना था। मेरी आँखें नींद के मारे झँपी जारही थी। उसी समय अचानक नौकरों के मकानों की ओर के बडे दरवाज़े मे से एक आदमी ड्रॉइंग रूम मे, जहाँ हम सब केवल दो मोमबत्तियों के धुँधले प्रकाश

* एक वर्स्ट ३५०० फीट का होता है

मे वैठे हुए थे, हलके-हलके पैर रखता हुआ जल्दी से आया और वीच कमरे मे पहुँचते ही घुटनो के वल गिर पड़ा। उसके हाथ मे, जो सुलगती हुई सिगरेट-पाइप थी, वह भी ज़मीन पर गिरी और उससे जो चिनगारियाँ उड़ीं, उनका प्रकाश उसके मुख पर पड़ा। उसमे हमने देखा कि वह टेमी अशोव है। वह पिताजी के सामने घुटनों के वल पड़ा हुआ कुछ प्रार्थना कर रहा था। मै नहीं जानता कि उसने क्या कहा, क्योंकि मै उसकी वात सुन ही न सका। मुझे तो वाद मे यह मालूम हुआ कि वह मेरे पिता के सामने घुटने टेककर इसलिए खड़ा हुआ कि वह अपनी नाजायज़ लड़की ब्यूनेश्का को, जिसके विषय मे वह पहले भी पिताजी से कह चुका था, पिताजी के पास लाया था और उनसे प्रार्थना कर रहा था कि वह उसे अपने पास रक्खें और अपने वच्चो के साथ-साथ शिक्षा दे। उसके वादसे ही हमने अपने वीच मेरी उम्र की चौड़े मुँह वाली एक वालिका ब्यूनेश्का और उसकी धाय-माँ एव्प्रेक्शीया को देखा। यह धाय एक लम्वे कद की वूढी औरत थी। उसके मुँह पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं और तुर्की मुर्गे की-सी उसकी ठुड्डी पर एक गाँठ थी, जिसे हम घूरकर देखा करते थे।

इस प्रकार ब्यूनेश्का का हमारे घर मे आना पिताजी और टेमी अशोव के वीच हुए किसी जटिल लेन-देन के फलस्वरूप हुआ था।

टेमी अशोव वहुत धनी आदमी था, लेकिन उसके कोई जायज़ सन्तान न थी। हाँ, दो लड़कियाँ थीं, एक तो डोनेश्का और दूसरी वेरोश्का, जिसकी पीठ पर कूवड़ निकल रही थी। इनकी माता मरफूशा एक दासी की लड़की थी। टेमी अशोव की उत्तराधिकारिणी उसकी दो वहिनें थीं। वह उनके लिए अपनी सारी शेष सम्पत्ति छोड़ रहा था, लेकिन पीरोगोव जागीर, जहाँ वह रहता था, पिताजी को इस शर्त पर देना चाहता था कि पिताजी उस गाँव को उन दोनो लड़कियों को दे दें। इस गाँव का दाम तीन लाख रुवल था और उस समय यह भी कहा जाता था कि पीरोगोव जागीर का मूल्य इससे कही ज्यादा है, क्योंकि उसमे सोने की खान है। इसके लिए यह चाल चली गई कि टेमी अशोव पिताजी को एक रसीद देगा, जिसमे तीन लाख

रूबल के लिए विरोगोव जागीर मेरे पिता को वेची हुई दिखाई जायगी। मेरे पिता ने हाथ के लिखे हुए एक-एक लाख रूबल के तीन नोट इस्लेनेव याजीकोव और ग्लेबोव को दिये। टेमी अशोव की मृत्यु होने पर पिताजी को वह जागीर मिलनी थी, जिसके वदले मे उसे तीन लाख रूबल उन दोनो कन्याओं को देने थे। इस्लेनेव याज़ीकोव और ग्लोवोव को पहले ही वतला दिया गया था कि उन्हें हाथ के लिखे नोट क्यो दिये जा रहे हैं।

शायद मैं सारी योजना को ठीक से नहीं वतला सका होऊँ, लेकिन इतना मुझे निश्चित रुप से मालूम है कि मेरे पिता की मृत्यु के बाद वह जागीर हमे मिली और इस्लेनेव, ग्लेबोव और याजीकोव के पास हाथ के लिखे हुए एक-एक लाख रूबल के नोट निकले। जव हमारे संरक्षक ने उन नोटों को भुनाया तो इस्लेनेव और ग्लोवोव ने तो एक-एक लाख रूबल दे दिये, लेकिन याज़ीकोव सारा रुपया हड़प गया।

ड्यूनेश्का हमारे साथ ही रहती थी। वह सीधी-सादी और शान्त लड़की थी, लेकिन वह चतुर नहीं थी, और वहुत रोनेवाली बच्ची थी। मुझे याद है कि उसे अक्षरज्ञान कराने का काम मुझे सौंपा गया था, क्योंकि मुझे उस वक्त तक फ्रेंच भाषा पढना आ गया था। पहले तो सव ठीक-ठाक चलता रहा, क्योंकि मै भी पॉच साल का था और वह भी पॉच साल की थी। परन्तु वाद मे वह उकता गई और जो शब्द मै उसे वताता, उसका ठीक-ठीक उच्चारण नहीं करती। वह चिल्लाने लगती और उसके साथ-साथ मै भी चिल्लाने लगता, और जिस समय घर के लोग आते, उस समय हमारी ऑखों के निराशा भरे ऑसू हमें एक भी शब्द वोलने से रोक देते।

उसके वारे मे दूसरी वात मुझे यह याद है कि जव कभी रकावी में से एक वेर गायव हो जाता और उसको चुरानेवाले का पता न चलता तो फीडर इवानोविच वडी गम्भीर मुद्रा वनाकर और हमारी ओर दृष्टिपात न करते हुए कहता कि फल खाने मे तो कोई हर्ज़ नहीं, लेकिन अगर किसी ने उसकी गुठली को निगल लिया होगा, तो उसकी मृत्यु तक हो सकती है। वस ड्यूनेश्का तुरन्त घवराकर वोल उठती कि नहीं उसने उस गुठली को

उगल दिया है। एक बार मेरे भाई मिटेन्का (डिमिट्री) और ड्यूनेश्का दोनों ने एक दूसरे के मुँह मे एक पीतल की जज़ीर उगलने का खेल खेलना आरम्भ किया और खेलते-खेलते उसने उस ज़ंजीर को इतने ज़ोर से उगला और मेरे भाई ने भी अपना मुँह इतना अधिक खोल रक्खा था कि जजीर उसके गले से नीचे उतरकर पेट मे चली गई। उस समय घोर निराशा मे वह कितना रोई, यह भी मुझे अच्छी तरह याद है। वह उस समय तक रोती रही जबतक कि डाक्टर ने आकर हम सबको शान्त नहीं कर दिया।

वह चतुर लडकी नहीं थी, लेकिन बडी सीधी-सादी और अच्छी लडकी थी। सबसे अच्छी बात यह कि वह इतनी चरित्रवाली थी कि यद्यपि वह और हम सब लडके साथ-साथ खेलते थे, लेकिन उसके और हमारे बीच बिलकुल भाई-बहिन का-सा सम्बन्ध था।

× × ×

मैंने प्रास्कोव्या ईसेव्ना के विषय मे अपने 'बचपन' मे नटाल्या सेविश्ना के नाम से काफी लिख दिया है। उसके विषय मे मैंने जो कुछ लिखा है, वह उसके जीवन से लेकर ही लिखा है। प्रास्कोव्या ईसेव्ना एक सम्भ्रात महिला थी। यद्यपि वह घर की रखवाली करती थी, लेकिन फिर भी बच्चों का सन्दूक हमेशा उसी के छोटे कमरे मे रहता था। उसके सम्बन्ध मे मुझे सबसे सुखद स्मृति यह है कि पढाई के बाद या पढाई के घण्टो मे भी, उसके छोटे कमरे मे बैठकर हम उसकी बातें सुना करते थे। शायद वह भी हमे उस आनन्दमय और सुकुमार अवस्था मे, हमारे विकास के समय, हमे देखना चाहती थी। "प्रास्कोव्या ईसेव्ना, दादा लडाई मे किस प्रकार जाते हैं? क्या घोडे पर ?" इस प्रकार कोई भी उसके साथ बात छेडने के लिये बड़बड़ा कर बोलता।

'वह घोड़े की पीठ पर और पैदल सब तरह लडाई मे लडे; तभी तो वह प्रधान सेनापति बना दिये गये' वह जवाब देती और साथ ही आलमारी मे से थोड़ी-सी धूप, जिसे वह ओशेकोव फ्यूमीगेशन' (ओशेकोव की धूप) कहती, निकाल लेती। जो कुछ वह कहती, उससे यह मालूम होता था

कि हमारे दादा उस धूप को ओशेकोव के घेरे के बाद लाये थे। वह देवता की मूर्ति के सामने जलती हुई मोमवत्ती से एक कागज जलाती और उससे उस धूप को भी जला देती, जिससे बडी सुन्दर सुगन्ध निकलती थी।

एक गीले तौलिये से मुझे पीटकर मेरा अपमान करने के अलावा (जैसा कि मैंने 'वचपन' मे वर्णन किया है) उसने एक वार और मुझपर गुस्सा किया। और कामों के साथ उसका एक काम यह भी था कि जव आवश्यकता पडे हमारे एनीमा लगाये। जवकि मैंने स्त्रियों के कमरे मे रहना छोड दिया था और नीचे की मज़िल मे थियोडोर ईवानोविच के पास आगया था, उस समय एक दिन सवेरे हम सव उठे और तुरन्त ही और भाइयो ने कपडे पहन लिये। मैं जरा सुस्त था, इसलिए पीछे रह गया। मै अपने सोने के कपडे उतारकर कपडे पहनने ही वाला था कि प्रास्कोव्या ईसेव्ना एक वूढी औरत के समान जल्दी-जल्दी पैर उठाती, अपना सारा सामान लेकर आ गई। इस सामान मे एक रवड की नली थी जो किसी कारण कपडे मे लिपटी हुई थी, जिसकी वजह से केवल नली का अगला भाग ही दिखाई देता था, और जैतून के तेल से भरी हुई एक रकावी। इस रकावी मे नली का मुह डूवा हुआ था। मुझे देखकर वह यह समझी कि मैं भी उन वच्चों मे से एक हूँ, जिसे एनीमा देना है। अत उसने मुझे एनीमा लगाने का निश्चय किया। वास्तव मे वह मेरे भाई को लगाना था, लेकिन मेरा भाई संयोग से अथवा छल से अचानक यह वात पहले से ही भॉप गया। वस्तुत हम सभी वच्चे प्रास्कोव्या से एनीमा लगवाने से वहुत घवराते थे, अत मेरा भाई शीघ्र ही कपडे पहनकर सोने के कमरे से जल्दी वाहर चला गया, और मेरे शपथपूर्वक यह कहने पर भी कि मुझे एनीमा नहीं लगाना है, प्रास्कोव्या न मानी और एनीमा लगा ही दिया।

उसकी ईमानदारी और वफादारी के कारण मैं उससे प्रेम करता था, लेकिन उससे अधिक प्रेम इसलिए करता था कि वह और वूढ़ी अन्ना इवेनोव्ना ओशकोव के घेरे के सम्बन्ध मे मेरे दादा के रहस्यमय जीवन का प्रतिनिधित्व करती थी।

अन्ना इवेनोव्ना हमारी नौकर नहीं रही थी; लेकिन तो भी मैंने उसे एक दो बार अपने घर पर देखा था। लोग कहते थे कि उसकी आयु १०० वर्ष की है और उसे पूगाशेव याद है। उसकी आँखे बहुत काली थीं और एक ही दाँत बच रहा था। उसका बुढ़ापा हम बच्चो को बहुत ही भयानक मालूम पड़ता था।

छोटी धाय टाशियाना फिलिप्पोव्ना साँवले रंग की छोटे, परन्तु मोटे-मोटे हाथवाली ठिगने कद की जवान स्त्री थी। वह बूढी धाय ऐनुश्का की मदद किया करती थीं। ऐनुश्का के विषय मे तो मुझे कुछ भी याद नहीं; क्योंकि उस समय मै बहुत छोटा था। मुझे अपने होने या न होने का भान उस समय होता था जबकि मै उसके पास होता था, और चूँकि उस समय मै अपने को देख और समझ नही सकता था, इसलिए मै उसे भी देख और समझ नहीं सकता था अत उसके बारे में मुझे कुछ भी याद नहीं। साफ शब्दो में मै उस समय इतना छोटा था कि मुझे अपना ही कुछ ज्ञान नहीं था, फिर धाय का कैसे होता ?

लेकिन मुझे ड्यूनेश्का की धाय एवप्रेक्शिया और उसकी गर्दन की गाँठ खूब याद है। हम लोग उसकी गाँठ को छूने के लिए उसके चारो ओर चक्कर लगाते थे। उस समय हृदय मे एक नई भावना यह उठती थी कि हमारी धाय ऐनुश्का सबकी धाय नही है। और ड्यूनेश्का अपने लिए पिरोगोवा से खास तौर पर धाय लाई है।

धाय टाशियाना फिलिप्पोव्ना की तो मुझे खूब याद है। क्योंकि मेरी धाय रहने के बाद वह मेरी भतीजियो और मेरे सबसे बड़े लड़के की धाय भी रह चुकी थी। वह उन प्रेमी औरतो मे से थी जो अपने पौष्य-पुत्रो से इतना प्रेम करने लगती है कि फिर उनके सारे हित उन्हीं मे केन्द्रित हो जाते है। अपने सम्बन्धियो से फिर उनका इतना ही नाता रह जाता है कि या तो वे उन्हें फुसला कर कुछ रुपया ऐंठ लें या उनकी मृत्यु के बाद उनकी सम्पत्ति के अधिकारी हो जायें।

ऐसी स्त्रियों के भाई, पति और लड़के बड़े उड़ाऊ होते है। जहाँ तक

मुझे याद है। टाशियाना फिलिपोव्ना का पति और पुत्र दोनो ऐसे ही फिजूलखर्च थे। इसी मकान मे उसी जगह, जहाँ पर बैठा-बैठा मैं यह सस्मरण लिख रहा हूँ, मैने उसको वडे कष्ट से लेकिन साथ ही शान्ति से मरते देखा है।

उसका भाई निकोलस फिलिप्पोविच हमारा कोचवान था। जागीरदारो और जमींदारों के अधिकाश लडकों के समान हम भी केवल उससे प्रेम ही नही करते थे, वल्कि उसे वडे मान और आदर की दृष्टि से देखते थे। वह विशेष मोटे बूट जूते पहनता था। उसके पास खडे होने पर अस्तवल की वू आती थी। उसकी आवाज़ मधुर और गम्भीर थी।

हमारे खानसामा वेसिली ट्रूवेट्सकौय का उल्लेख करना भी ज़रूरी है। वह एक मिलनसार और दयावान् पुरुष था। उसे वच्चो से विशेषकर सर्जी के वच्चो से वहुत प्रेम था। वाद मे सर्जा के यहाँ वह नौकर हुआ और वहीं उसका देहान्त भी हुआ। वह हमे एक वडे थाल मे विठाकर कोठार में ऊपर-नीचे लाता और ले जाता। यह जगह हमे रहस्यमय मालूम पडती थी। इससे हमे वड़ा आनन्द आता और हम उससे कहते—"हमे भी" अव की मेरी वारी है। मुझे उसकी प्रेमभरी तिरछी मुस्कान याद है। जव वह हमे गोद मे लेता था तो हरएक उसका झुर्रियाँ पडा हुआ चेहरा देख सकता था। उसकी एक याद उस वक्त की है जव वह कारवाचेव्का की जागीर को विदा हो रहा था। यह जागीर कुर्स्क प्रान्त मे थी और पेट्रोव्स्की से मेरे पिता को विरासत के रूप मे मिली थी। वेसिली ट्रूवेट्सकॉय की विदाई वडे दिन की छुट्टियों मे हुई थी, जवकि हम वच्चे कुछ दासों के साथ वडे कमरे मे खेल रहे थे।

वडे दिन के त्योहार के विनोद की कुछ वातें भी कह देनी चाहिएँ। इन दिनो हमारे घर के सव दास, जिनकी संख्या लगभग ३० के थी वहुरूपियों के समान भिन्न-भिन्न प्रकार के कपडे पहनकर वडे कमरे मे इकट्ठे होते और वहुत से खेल खेला करते थे। ग्रेगोरी, जो सिर्फ़ ऐसे ही मौको पर हमारे यहाँ आया करता था, वाजा वजाता और वे सव लोग नाचा

करते थे। इससे हमारा बडा मनोविनोद होता था। ये लोग भिन्न-भिन्न वेश बनाते थे। कपडे वे ही पिछले सालों के होते थे। कोई भेडिया बनता, कोई मदारी। कोई बकरी का रूप धारण करता, कोई तुर्की आदमी और औरत बनता था। डाकू और किसान, स्त्री और पुरुषो के भेष धरकर भी वे आते थे। इन विचित्र पोशाको मे बहुत से मुझे बहुत सुन्दर लगते थे। विशेषकर तुर्की लडकी माशा तो बहुत ही अच्छी लगती थी। कभी-कभी बुआ हमे भी ऐसे ही कपडे पहना देती थी। पत्थर लगी हुई पेटी और एक जाल की, जिसके चारों ओर सोने-चॉदी का काम हो रहा हो, इस समय बडी मॉग रहती थी। मै भी अपने होठो पर कोयला रगडकर और काली-काली मूँछे बनाकर अपने को बडा भाग्यवान समझता था। मै शीशे मे अपना मुँह काली-काली मूँछे और भौहे देखता; और यद्यपि मुझे चाहिए था कि मै एक तुर्की के समान गम्भीर मुद्रा बना लूँ, लेकिन फिर भी मै खुशी से अपनी मुस्कराहट नहीं रोक सकता था। ये बहुरूपिये सब कमरो मे जाते, जहॉ इन्हे सुस्वादु भोजन खाने को मिलता था। एक बार जब मै बहुत छोटा था, बडे दिन की छुट्टियो मे इस्लेनेव-परिवार के सब आदमी पिता (मेरी पत्नी के दादा) उनके तीनो लडके और तीनो लडकियॉ बडे सुन्दर-सुन्दर रूप बनाकर हमारे यहॉ आये। उन्होंने आश्चर्यजनक भेष बना रक्खे थे। उनमे एक शृङ्गार करने की मेज बना हुआ था, दूसरा जूता, एक गत्ते लगाकर विदूषक बना हुआ था और एक कुछ और बना हुआ था। वे तीस मील की दूरी से चलकर आये थे। गॉव मे आकर उन्होने अपना-अपना स्वॉग बनाया और फिर हमारे यहॉ बडे कमरे मे आ गये। इस्लेनेव पियानो बजाने बैठ गया और अपने बनाये हुए गाने

---

* अंग्रेजी में इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप बनाने को 'फैन्सी-ड्रेस शो' कहते हैं। भारतीय बहुरूपियों के समान अंग्रेजों में 'फैन्सी-ड्रेस-शो' होता है। उसमें छोटे से लेकर बडे-से-बडे आदमी तक भाग लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति विचित्र-विचित्र वस्त्र धारण कर और विचित्र-विचित्र रूप धरकर आते हैं, ऐसा कि कोई पहचान भी न सके। अन्त में सबसे बढकर भेष बदलने और रूप बनानेवाले को इनाम मिलता है।

गाने लगा, जिनकी लय मुझे अब भी याद है। उनकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है

नये वर्ष मे नाच-रंग कर,
हम अभिवादन करने आये।
सुख पायेंगे, यदि तुम सबका,
हम कुछ भी मन बहला पाये॥

ये सब बातें बड़ी आश्चर्यकारी थी और शायद बड़े लोग इनसे बहुत प्रसन्न भी होते थे, लेकिन हम बच्चों को तो घर के दासो के स्वाँग मे ही आनन्द आता था।

ये सब उत्सव बड़े दिन से आरम्भ होकर नये साल मे जाकर समाप्त होते थे, लेकिन कभी-कभी वे १२वें दिन की रात तक चलते थे। हाँ, नये साल के पहले दिन के बाद थोड़े आदमी आते थे और इन सब बातो मे भी उतना रस नही रहता था, ये फीके पड जाते थे। इसी दिन वेसिली शरवेचेव्का के लिए रवाना हुआ। मुझे याद है कि हम लोग अपने कमरे में धुँधले प्रकाश मे बनाई हुई महोगनी* की लकड़ी की चमड़े की गद्दियोंदार कुर्सियों पर एक कोने मे घेरा-सा बनाकर बैठे हुए 'छोटे रूबल' खेल रहे थे। हम लोग एक दूसरे को रूबल देते जाते थे और गाते जाते थे—'छोटे रूबल जाओ—छोटे रूबल जाओ।' फिर हम मे से एक लड़का उस रूबल को ढूँढने जाता। मुझे याद है कि एक दास-पुत्री इन पंक्तियों को बड़े ही सुन्दर और मधुर स्वर से गाती थी। इसी समय एकाएक कोठार का दरवाज़ा खुला और वेसिली आया। वह अजीब तरह से कपड़े-लत्ते पहने हुए था। बटन खुले थे और उसके हाथ मे थाल-वाल भी नही था। वह कमरे मे से होता हुआ अध्ययन-कक्ष मे चला गया। उसी समय मुझे मालूम हुआ कि वह परिचारक का काम करने के लिए शरवेचेव्का जा रहा है। मुझे यह भी मालूम हुआ कि वहाँ उसकी तरक्की हो गई है, इसलिए मुझे उसके इस जाने पर खुशी हुई। लेकिन साथ ही मुझे यह जानकर दुःख भी हुआ कि वह

---

* एक जंगली वृक्ष।

अब यहाँ नही आयेगा और हमें थाल में बिठा-बिठाकर कोठार मे ऊपर-नीचे नहीं ले जायगा। वास्तव में उस समय न तो मैं यह समझ सका, न यह विश्वास ही कर सका कि इतना उलट-फेर कभी सम्भव हो सकता है। मैं बहुत ज़्यादा उदास हो गया। 'छोटे रूवल जाओ' के अन्तिम शब्द हृदय मे बहुत खटकने लगे। और जिस समय वेसिली हमारी बुआओं को प्रणाम कर पहले जैसी मृदुल मुस्कराहट के साथ लौटा और हमे अपने कन्धों पर चढाकर प्यार करने लगा, उस समय जीवन मे पहली बार मुझे इस जीवन की अस्थिरता पर भय और डर का अनुभव हुआ, और प्रिय वासिली के प्रति करुणा और प्रेम के भाव मन मे उठे।

लेकिन बाद मे जब मैं दुबारा वेसिली से अपने भाई के (जिन पर उस समय सन्देह किया जाता था) नौकर के रूप में मिला, तब पहले की भ्रातृभाव की वह पवित्र और मानवी भावना मुझ मे नहीं रही थी।

[टॉल्स्टाय के तीन बडे भाई थे। उनमे सबसे बडे निकोलस थे, जिनको घर मे निकोलेन्का कहकर पुकारते थे, टॉल्स्टाय सबसे अधिक प्रेम और सम्मान करते थे। इनका टॉल्स्टाय के जीवन पर बहुत प्रभाव पडा। उनके विषय मे टॉल्स्टाय लिखते हैं .]

वह बाल्यकाल मे बडे तेज़ और प्रतिभाशाली बालक थे और बड़े होने पर उनकी प्रतिभा और भी विकसित हुई। तुर्गनेव उनके विषय में ठीक ही कहते थे कि उनमें ऐसी कोई कमी नहीं है जो एक अच्छा लेखक बनने के लिए जरूरी है। उनमे एक अच्छे लेखक के कई गुण थे। उनमे कला की भावना बड़ी तेज़ थी, क्या बात और कितनी बात किस स्थान पर लिखी जानी चाहिए, यह भी वह अच्छी तरह जानते थे। उनका व्यंग भी बहुत प्रसन्न करनेवाला और अच्छा होता था, और उनकी कल्पना तेज़ और अनन्त थी। वह जीवन का उच्च और ऊँचे नैतिक मान का आदर्श रखते थे। और इन सबके अतिरिक्त एक विशेष गुण यह था कि उन्हें अहकार छू भी नहीं गया था। उनकी कल्पना इतनी तेज़ थी कि वह घंटों परियों या भूतों की कहानियाँ अथवा श्रीमती रेडक्लिफ के ढंग की अन्य मनोरंजक कहानियाँ

बिना रुके हुए सुना सकते थे, और उन कहानियों मे भी इतनी सजीवता और स्वाभाविकता होती थी कि उनको सुनते समय आदमी यह भूल जाता था कि वे सच्ची नहीं बल्कि गढी हुई कहानियाँ है। जिस समय वह कहानी सुना रहे या पढ रहे न होते (वह पढते बहुत थे) उस समय चित्र बनाया करते थे। शैतान के, जिसके सींग और चढी हुई मूछे हों, चित्र बहुत तरह के और बहुत-से काम करते हुए बनाते थे। ये चित्र भी एकदम काल्पनिक होते थे।

जिस समय मेरे भाई डिमिट्री ६ साल के और सर्जा ७ वर्ष के थे, उस समय निकोलस ने ही सबसे यह कहा था कि उन्हे एक ऐसा मन्त्र मालूम है, जिसे यदि बता दिया जाये तो संसार मे कोई भी दुखी न रहे, कोई बीमारी न हो, किसी को कोई कष्ट न हो, कोई आदमी किसी से नाराज न हो। सब एक-दूसरे से प्रेम करें और परस्पर धर्म-भाई बन जायें। यही नहीं, हमने तो धर्म-भाई का एक खेल खेलना भी आरम्भ किया, जिसमे हम सब कुर्सियों के नीचे बैठ जाते और अपने को दुशालों का पर्दा डालकर छुपा लेते, एक दूसरे से सटकर और लिपटकर बैठ जाते अथवा अँधेरे मे एक दूसरे के पैरों पर पड जाते।

हमे यह धर्म-भ्रातृत्व तो बतला दिया गया, किन्तु असली मन्त्र नहीं बतलाया गया जिससे कि हर एक मनुष्य की पीड़ायें और दुख मिट सकते थे, जिनसे कि वे एक-दूसरे से लड़ना-झगड़ना और एक-दूसरे पर गुस्सा होना बन्द कर देते और अनन्त आनन्द प्राप्त करते। उन्होंने कहा कि मैने वह मन्त्र एक हरी लकडी पर लिखकर उसे एक खड्ड के किनारे एक सडक के पास गाड दिया है। और चूँकि मृत्यु के बाद मुझे तो कहीं-न कही दफनाया ही जाता, अत मैने यह इच्छा प्रकट की कि मेरी मृत्यु के बाद मुझे निकोलेन्का की स्मृति मे उसी स्थान पर, जहाँ कि वह लकडी गाडी गई थी, दफनाया जाय। उस लकडी के अतिरिक्त वह हमे फेनकेरोनीव पहाडी पर भी लेजाने के लिये कहते थे, परन्तु इस शर्त पर कि हम एक कोने पर खड़े हों और सफेद रीछ का विचार भी मन मे न आने दें। मुझे याद है कि मैं अधिकतर

एक कोने मे खड़ा रहता और इस बात का प्रयत्न करता कि मुझे सफेद रीछ का ध्यान न आये। परन्तु उसका ध्यान आये बिना न रहता। दूसरी शर्त यह थी कि फर्श पर रक्खे तख्तो की दरार पर बिना थर्राये या बिना कॉपे चलना पडेगा। तीसरी शर्त यह थी कि एक साल तक जीवित या मृत या पका हुआ खरगोश न देखो। इसके साथ-साथ यह भी शपथ लेनी पड़ती थी कि हम यह भेद किसी को न बतायेंगे। जो कोई भी आदमी निकोलस की इन शर्तों को तथा इनके अतिरिक्त उन शर्तों को, जो बाद मे वह बतावें, पालन करे तो उसकी एक इच्छा, चाहे वह कुछ भी हो, अवश्य पूर्ण हो जायगी।

[अपने अन्य भाइयो के विषय मे टॉल्स्टाय लिखते है.]

डिमिट्री मेरे साथी थे, निकोलस का मै सम्मान करता था, सर्जा को देखकर तो मेरा रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठता था। मै उनका अनुसरण करता, उनसे प्रेम करता और यही कामना किया करता था कि मै बिल्कुल उन-जैसा हो जाऊँ। उनकी सुन्दरता, मधुर स्वर (वह सदा गाते रहते थे), उनकी चित्रकला, उनकी चपलता, प्रसन्नचित्तता और विशेषकर उनके स्वाभाविक आत्माभिमान को देखकर मै आनन्द से फूल उठता था। मुझे अपना बड़ा ख़याल रहता था और मै सदा इस बात को, , चाहे ठीक या ग़लत, महसूस करता था कि दूसरे लोग मेरे विषय मे क्या ख़याल रखते है। इसी कारण मेरे जीवन का आनन्द मिट जाता था और सम्भवत इसीलिए मै दूसरे आदमियों में इससे विपरीत गुण अर्थात् स्वाभाविक आत्मश्लाघा देखना पसन्द करता था। इसीलिए मै सर्जा से प्रेम करता था। लेकिन उस भावना को बतलाने के लिए 'प्रेम' बिल्कुल ठीक शब्द नही है। मै निकोलस से प्रेम करता था लेकिन सर्जा को देखकर तो मै अपने को भूल-सा जाता था, मानो कि मै अपने से कोई भिन्न और अगम्य वस्तु को पाकर मंत्रमुग्ध हो गया हूँ। उनका जीवन वास्तव मे मनुष्य का जीवन था। वह बहुत सुन्दर परन्तु मेरे लिए अगम्य और अचिन्त्य रहस्यपूर्ण और इसी कारण बहुत आकर्षक था।

अगस्त १६०४ मे उनकी मृत्यु हो गई। अपनी आखिरी बीमारी और मृत्यु-शय्या पर भी वह मेरे लिये उतने ही गहन, अगाध और प्रिय थे जैसे कि बचपन के दिनो मे। बाद में बुढापे मे वह मुझे ज्यादा प्यार करने लगे थे, अपने प्रति मेरे प्रेम का आदर करते थे, मुझ पर अभिमान करते थे और विवादास्पद विषयों में मेरे मत से सहमत होने का प्रयत्न करते, लेकिन हो नहीं सकते थे। वह जैसे थे अन्त तक वैसे ही रहे। वह अद्वितीय, विलक्षण, सुन्दर, कुलीन, आत्माभिमानी और इन सबसे अधिक इतने सच्चे और शुद्ध-हृदय व्यक्ति थे कि जैसे मैंने आज तक नहीं देखे। वह जैसे ही अन्दर से थे, वैसे ही बाहर से थे। वह कोई बात छिपाते नहीं थे और जो थे उससे बढकर किसी के सामने अपने को प्रकट न करते थे।

निकोलस के साथ तो मैं रहना, बातें करना और विचार-विनिमय करना पसन्द करता था। सर्जा का मैं पदानुसरण करना चाहता था। उनका अनुसरण करना मैंने बहुत बचपन से ही आरम्भ कर दिया था। वह अपनी मुर्गियाँ रक्खा करते थे, अत मैंने भी अपनी मुर्गियाँ रखनी आरम्भ कर दीं। पशु-पक्षियों के जीवन का अध्ययन करने का वह मेरा पहला ही अवसर था। मुझे मुर्गियो की बहुत-सी जातियाँ, भूरी, चितकबरी और कलंगीवाली, अब भी याद है। मुझे याद है कि किस प्रकार हमारे बुलाने पर वह दौडकर आतीं, किस प्रकार हम उन्हे दाना डालते और हम उस ऊच मुर्गे से, जो उनके साथ दुर्व्यवहार करता था, कितनी घृणा करते थे। सर्जा ने ही पहले पहल मुर्गियों के बच्चे मॅगाये और उन्हे पालना शुरू किया। मैंने तो केवल उनकी नकल करने के लिए उन्हें पाला था। सर्जा एक कागज पर मुर्गे-मुर्गियो के चित्र बनाते और उनमे बडे सुन्दर रंग भरते। वे मुझे बडे आश्चर्यजनक लगते थे। मै भी यही करता था; लेकिन मेरे चित्र बडे भद्दे होते थे। फिर भी मैं इस कला मे लम्बी-चौड़ी बातें बनाकर ही अभ्यस्त होने की आशा रखता था। जब सदियो के दिन आ गये और खिड़कियो मे दोहरे किवाड़ लगा

दिये जाते, तब सर्जी ने मुर्गियो को खाना देने का एक नया उपाय खोज निकाला। वह किवाड़ो की चावियो के छेद मे से सफेद और काली रोटी के लम्बे-लम्बे टुकड़े बनाकर उन्हे दिया करते। मै भी यही किया करता था।

मेरे बाल-मस्तिष्क पर एक मामूली-सी घटना ने बड़ा प्रभाव डाला। मुझे वह घटना इतनी अच्छी तरह याद है, मानो वह अभी घटी हो। टेमी अशोव हम बच्चो के कमरे मे बैठा हुआ फीडर ईवानोविच के साथ बात-चीत कर रहा था। न जाने कैसे उपवास की बात चल पड़ी और अच्छे-स्वभाव के व्यक्ति टेमी अशोव ने सीधे-सादे भाव से कहा—"मेरे पास एक रसोइया था, जो व्रत के दिन भी माँस खाता था। मैंने उसे तुरन्त फौज मे भेज दिया। मुझे यह घटना अब इसलिए याद है कि उस समय मुझे यह बात एकदम अजीब-सी मालूम पड़ी और मेरी समझ मे जरा भी नहीं आई।

एक घटना और है और वह पेरोक्रो* की जागीर के उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे थी। पेरोक्रो जागीर का एक भूतपूर्व दास इल्या मेट्रोफेनिच था। यह एक लम्बा बूढा आदमी था, जिसके बाल सफेद हो गये थे और जो पक्का शराबी और उस समय के सारे हथकण्डो मे उस्ताद था। इसकी सहायता से इस जागीर के उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे जो मुकदमा चला था वह जीत लिया गया तो नेरुच से भरी हुई गाडियो एवं घोडो के झुंड-के-झुंड आये जिन्हे आदमी भूल नहीं सकता। उस दास ने इस जागीर के काम को बड़ी अच्छी तरह से सँभाला। अत उसके उपलक्ष मे उसे मृत्युपर्यन्त यास्नाया पोल्याना में रहने की इजाज़त मिल गई। मेरे बहनोई वेलेरियन के चाचा प्रसिद्ध 'अमेरिकन' थियोडोर टॉल्स्टाय हमारे यहाँ आये। वह एक गाड़ी मे बैठकर आये, सीधे पिता जी के पढने के कमरे मे पहुँचे और खास तरह की सूखी फ्रासीसी रोटी की माँग की। वह उसे छोडकर दूसरी रोटी

* इस जागीर में कुर्स्क प्रान्त के शरबाचेव्का और नेरुच नामक दो जागीरें थी।

खाते ही न थे। मेरे भाई सर्जी के दाँतो मे बड़े जोर का दर्द हो रहा था। थियोडोर ने पूछा कि सर्जी को क्या हुआ? और जब उन्हे मालूम हुआ कि उसके दाँतो मे बडे ज़ोर से दर्द हो रहा है, तब उन्होंने कहा, अच्छा मै दर्द को अभी जादू से बन्द किये देता हूँ। वह पिताजी के पढने के कमरे मे गये और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। थोडी देर बाद वह मलमल के दो रूमाल, जिनके किनारो पर कुछ फूल-पत्तियाँ कढी हुई थीं, हाथ मे लेकर आये। उन्होंने दोनो रूमाल हमारी बुआ को देते हुए कहा—'यह रूमाल बाँधते ही दर्द मिट जायगा। और यह रूमाल लगाते ही उसे नींद आ जायगी।' बुआ ने वे रूमाल ले लिये और उन्हे उसी प्रकार लगा दिया, और वास्तव मे हम लोगो के देखते-देखते दर्द मिट गया और भाई साहब को नींद आ गई।

उनका हजामत बना हुआ कठोर, रूखा और दमकता हुआ सुन्दर मुख, मुँह के कोनो तक कटी हुई कलम और घुँघराले बाल मुझे बहुत अच्छे लगते थे। इस असाधारण, अपराधी और विशेष आकर्षक मनुष्य के सम्बन्ध में बहुत-सी बाते ऐसी हैं जिन्हे मै कहना पसन्द करूँगा।

इनके अतिरिक्त एक सैनिक सज्जन राजकुमार वोल्कोन्स्की के भी हमारे यहाँ आने की मुझे याद है। यह माताजी के कोई सम्बन्धी, मौसेरे या फुफेरे भाई थे। वह मेरा बड़ा दुलार करते, मुझे अपने घुटने पर बिठा लेते, और जैसा कि बहुधा होता है मुझे गोदी मे बिठाये-बिठाये घर के बडे आदमियो से बाते करते रहते। मै उनके पास से उठने का प्रयत्न करता तो वह मुझे और कसकर थाम लेते। मेरा उनका झगडा कुछ मिनटो तक चलता। लेकिन इस तरह कैद हो जाने की भावना उत्पन्न होने, आजादी छिन जाने और उसपर भी बल-प्रयोग से मै इतना उकता उठता और मुझे इतना क्रोध आता कि मै एकाएक ज़ोरो से झगडने और चिल्लाने लगता और उन्हे मार भी देता।

यास्नाया पोल्याना से दो मील दूर एक गाँव ग्रुमण्ड है। उसका यह नाम मेरे दादा ने रक्खा था जो आर्कैन्जल के. जहाँ पर ग्रुमण्ड नाम का

एक टापू था, गवर्नर थे। [ग्रुमण्ड के सम्बन्ध में टॉल्स्टाय लिखते है कि वहाँ पर पशुओं के लिए एक सुन्दर बाड़ा और जब-कभी रहने के लिए एक बहुत सुन्दर छोटा-सा मकान बना हुआ था। टॉल्स्टॉय परिवार के बच्चो को यहाँ दिन बिताना बहुत अच्छा लगता था, क्योंकि यहाँ पर पानी का एक बडा सुन्दर सोता और मछलियो से भरी हुई एक छोटी-सी तलैया थी। आगे चलकर वह लिखते है]

"लेकिन एक बार एक घटना से, जिसके कारण हम सभी—कमसे-कम मै और डिमिट्री—करुणार्द्र हो चीख मारकर रो पडे, हमारा सारा आनन्द हवा हो गया। बात यह हुई कि हम सब अपनी गाड़ी में बैठे घर लौट रहे थे। फीडर इवानोविच का भूरे रग, सुन्दर आँखे और नरम घुंघराले बाल वाला शिकारी कुत्ता बर्था, हमारी गाड़ी के आगे-पीछे भाग रहा था। जैसे ही हम ग्रुमण्ड बाग से आगे बढे, एक किसान के कुत्ते ने उस पर हमला किया। बर्था गाड़ी की ओर भागा। फीडर ईवानोविच गाड़ी को न रोक सका और गाड़ी उसके एक पंजे पर फिर गई। जब हम घर आये और बर्था भी हमारे पीछे पीछे तीन पैरो से लँगड़ाता-लँगड़ाता आया तो फीडर इवानोविच और हमारे खिदमतगार निकिटा डिमिट्री ने (जो एक शिकारी भी था) उसका पैर देखकर कहा कि उसका पैर टूट गया है और अब यह आगे कभी शिकार के काम नहीं आ सकता। मै ऊपर अपने छोटे कमरे में इनकी बाते सुन रहा था। जिस समय फीडर इवानोविच ने कुछ डींग हाँकते हुए यह कहा कि 'अब यह किसी काम का नहीं रहा, इसका तो एकमात्र उपाय यही है कि इसे मार दिया जाये' तो मै इन शब्दों पर विश्वास नही कर सका।

बेचारा कुत्ता पीड़ित था, बीमार था और इसके लिये उसे मौत के घाट उतारा जा रहा था। मेरे मन में यह भावना उठी कि नहीं यह बात गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए। परन्तु फीडर इवानोविच ने जिस ढंग से यह बात कही और निकिटा डिमिट्री ने जिस ढंग से उसका समर्थन किया, उससे मालूम होता था कि वे अपना निर्णय पूरा करने पर उसी प्रकार तुले

हुए है जैसे कि कुज़मा* के कोडे लगवाते समय अत. अपने से वडे आदमियों के, जिनका कि मैं आदर करता था, इस दृढ निश्चय के सामने मुझे अपनी उस भावना मे (कि जो काम कर रहे हैं ठीक नही) विश्वास करने की हिम्मत न पडी, विशेषकर उस समय जब कि उसके पहले मैं टेमीअशोव के मुँह से यह सुन चुका था कि किस प्रकार उसने अपने रसोइया को व्रत के दिन मॉस खाने पर फौज में भेज दिया था। मैं इस निर्णय को भी ग़लत समझता था।

मै अपने दाल्य-जीवन के एक आध्यात्मिक अनुभव के विषय में कुछ कहूँगा। यह अनुभव मेरे वचपन मे मुझे अनेक बार हुआ और मै समझता हूँ कि वह वाद के वहुत से अनुभवों से कहीं वढकर हैं। वह इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह प्रेम का पहला अनुभव था। किसी व्यक्ति के प्रति

---

* इस घटना के विषय में टॉल्स्टाय इस प्रकार लिखते हैं --

हम सव वच्चे घूमकर अपने शिक्षक फीडर इवानोविच के साथ वापस लौट रहे थे। उसी समय खलिहान के पास हमें हमारा मोटा कोचवान ऐण्ड्रू मिला। उसके साथ हमारा सहायक कोचवान कुजमा भी था जिसकी आँखे भेड़-सी थीं और इसी कारण वह भेड़ा कुजमा कहलाता था। कुजमा वहुत उदास था। उसका विवाह हो चुका था और उसकी जवानी भी ढल चुकी थी। हममें से एक ने ऐण्ड्रू से पूछा कि वह कहाँ जा रहा है। उसने शान्ति से उत्तर दिया कि वह कुजमा को खलिहान पर कोडे लगाने के लिये ले जा रहा है। अच्छे स्वभाव के कुजमा की मुँह लटकाई हुई मूर्ति और इन शब्दों ने जो भयानकता की भावना मेरे मन में पैदा कर दी, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। शाम को मैंने यह वात अपनी बुआ टाशियाना ऐलेक्जेण्ड्रोव्ना से कहा जिन्हें शारीरिक दण्ड देने से वडी घृणा थी और जहाँ कहीं उनका वस चलता, वह कभी दासों को या हमको शारीरिक दण्ड न देने देती थीं। मैंने जो कुछ कहा, उससे उनको वहुत बुरा लगा और उन्होंने मुझसे कहा, कि "तूने उसे रोका क्यों नहीं ?' उनके इन शब्दों से मुझे और भी दुःख हुआ।" मैने कभी यह सोचा ही नहीं था कि हम भी ऐसे मामलों मे पड़ सकते हैं। पर वास्तव में हम ऐसे मामलों में बोल सकते थे। परन्तु अब तो वात हाथ से निकल चुकी थी और वह भयानक काण्ड किया जा चुका था।

प्रेम नहीं, बल्कि प्रेम के प्रति प्रेम, ईश्वर के प्रति प्रेम जिसका अनुभव बाद में बहुत कम होता था, लेकिन होता अवश्य था। और शायद इसीलिए (इसके लिए ईश्वर का धन्यवाद है) कि उसका बीज बचपन में ही मेरे हृदय मे बो गया था। इसका अनुभव इस प्रकार होता था। हम, विशेषकर मैं, डिमिट्री और लड़कियाँ कुर्सियो के नीचे एक-दूसरे से, जितना हो सकता मिलकर बैठ जाते। इन कुर्सियो के चारों ओर शाल लपेट दी जाती और इनके ऊपर गद्दियाँ ढक दी जातीं। तब हम सब आपस मे कहते कि हम सब भाई-भाई है; और उस समय एक-दूसरे के प्रति एक विचित्र प्रेम-भाव का अनुभव करते। कभी यह प्रेम-भावना बढकर लाड़-दुलार तक पहुँच जाती और हम एक-दूसरे को थपथपाने लगते या हाथों में लपेटकर प्रेम से आलिंगन कर एक-दूसरे को खीच लेते।

कभी-कभी हम उन कुर्सियों के नीचे बैठे-बैठे ही यह बात-चीत किया करते थे कि हम किस-किस से कितना प्रेम करते हैं, सुखी और प्रसन्न जीवन बिताने के लिए किन-किन बातो की आवश्यकता है; हमें किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करना और किस प्रकार सबके प्रति प्रेम-भाव रखना चाहिए।

मुझे याद है कि ये सब बातें एक यात्रा के खेल से आरम्भ होतीं, हम लोग कुछ कुर्सियो पर बैठ जाते और कुछ कुर्सियों पर अधिकार जमा लेते। एक गाड़ी बनाते और उसमें हम सब लोग बैठकर यात्री से 'धर्म-भाई' के रूप में बदल जाते। इसमें हमारे साथ और लोग भी शामिल हो जाते। यह खेल बहुत ही अच्छा था और ईश्वर को धन्यवाद है कि हम यह खेल खेलते थे। हम इसे खेल कहते थे लेकिन वास्तव में इसे छोड़कर संसार की प्रत्येक बात एक खेल ही है।

[टॉल्स्टाय के जर्मन-जीवनी के लेखक लौवेनफेल्ड के यह पूछने पर कि टॉल्स्टाय को ज्ञानार्जन की इतनी पिपासा होते हुए भी उन्होंने उपाधि लेने से पहले ही विश्वविद्यालय क्यों छोड़ दिया, टॉल्स्टाय ने लिखा है :]

'हाँ, मेरी ज्ञान-पिपासा ही मेरे यूनिवर्सिटी छोडने का कारण थी। कज़ान मे हमारे शिक्षक जिन विषयो पर जो-जो व्याख्यान देते थे, वे मुझे ज़रा भी रोचक नही लगते थे। पहले तो मैंने एक साल तक पूर्वी भाषाओं का अध्ययन किया, परन्तु उसमे मैंने वहुत थोड़ी प्रगति की। मै हरएक चीज़ मे जी-जान से लग पड़ता था और एक ही विषय पर एक साथ वहुतेरी पुस्तकें पढ डालता था। लेकिन एक साथ मै एक ही विषय की पुस्तकें पढता था। जब मै एक विषय को उठाता तो फिर उसको बीच मे छोड़ता न था और उस पर वे सव पुस्तकें पढता था जो उस विषय पर प्रकाश डालती थीं। कजान मे मेरा यही हाल था।'

[एक दूसरे अवसर पर टॉल्स्टाय ने कहा]

विश्वविद्यालय छोडने के विशेषकर दो कारण थे। पहला तो यह कि मेरे भाई सर्जी अपनी पढाई समाप्त कर चुके थे और उन्होने विद्यालय छोड दिया था। दूसरे केथेराइन की 'नकाज़' और 'ऐस्प्रिट द लुईस' पर मैंने जो लिखा, उसने मेरे लिये मानसिक कार्य का एक नवीन क्षेत्र खोल दिया। विद्यालय के काम के कारण मुझे इसमे सहायता मिलनी तो दूर, मेरे काम मे वाधा भी पड़ती थी।

मेरे भाई डिमिट्री मुझसे एक साल वडे थे। उनकी आँखे वडी-बड़ी थीं और उनसे गम्भीरता टपकती थी। मुझे यह तो याद नहीं कि वचपन मे वह कैसे थे, लेकिन वाद मे मैंने लोगो के मुँह से सुना कि वह वचपन मे वडे सनकी और अस्थिर थे। यदि उनकी धाय उनकी साल-सँभाल ठीक न करती तो वह इसपर उससे क्रोधित होते और चिल्लाते। मैंने यह भी सुना है कि माताजी उनसे वहुत परेशान थीं। वह आयु मे लगभग मेरे वरावर ही थे और हम दोनो साथ-साथ वहुत खेले। यद्यपि मै उनसे इतना प्रेम नही करता था जितना सर्जी से, न इतना आदर ही जितना कि मै निकोलस का करता था, लेकिन फिर भी हम दोनों मे मित्रभाव था, और मुझे याद नहीं कि हम दोनो कभी लड़े हों। हो सकता है कि हम कभी लडे भी हों, लेकिन उस लडाई की जलन हमारे दिलो मे विल्कुल न रही। मै

उनसे उसी प्रकार साधारण और स्वाभाविक तौर पर प्रेम करता रहा जिसका (प्रेम का) न तो मुझे ज्ञान था, और न जिसकी अब स्मृति ही शेष है। मै यह समझता हूँ और जानता हूँ और विशेषकर बचपन का यह मेरा अपना अनुभव भी है कि बाल्यकाल मे दूसरो के प्रति प्रेम आत्मा की एक स्वाभाविक स्थिति है। या, दूसरे शब्दों में एक-दूसरे के बीच एक स्वाभाविक सम्बन्ध है, और जिस समय मनुष्य की ऐसी स्थिति होती है उस समय उसे उस प्रेम का ज्ञान नहीं रहता। उसका ज्ञान तो तभी होता है जब मनुष्य प्रेम नही करता, 'प्रेम नहीं करता' नही, बल्कि जब वह किसी से डरने लगता है। (मै भिखारियो से या वोल्कोन्स्कियो मे से एक से, जो मुझे चुटकी लिया करता था, डरता था। लेकिन मै समझता हूँ कि इनके अतिरिक्त मै किसी से नही डरता था।) अथवा जब कोई आदमी किसी एक आदमी से ही विशेष प्रेम करने लगता है, जिस प्रकार कि मै अपनी 'आण्टी' टाशियाना ऐलेक्ज़ेण्डोव्ना से या अपने भाई सर्जी और निकोलस, वेसिली, धाय ईसेव्ना और पेशेन्का से प्रेम करता था।

सिवाय इसके कि वह बडे प्रसन्न-चित्त थे, बचपन मे मुझे डिमिट्री के सम्बन्ध में कुछ भी याद नहीं, लेकिन जब सन् १८४० मे (इस वक्त उनकी आयु केवल १३ वर्ष की थी) हम दोनो कज़ान विश्वविद्यालय मे गये, उस समय मुझे उनकी विशेषतायें मालूम हुई और उनका मुझपर प्रभाव पडा। उसके पहले मै उनके विषय मे केवल इतना जानता था कि वह उस प्रकार प्रेम मे नही पड़ते जिस तरह मैं और सर्जी, और न नाच-रग और सैनिक प्रदर्शन ही पसन्द करते थे। वह तो कडे परिश्रम के साथ पढते थे। पोलोन्स्की नाम के एक अण्डर-ग्रेजुएट शिक्षक हमे पढाया करते थे। हम भाइयों के विषय मे उन्होने अपनी राय यो प्रकट की थी · 'सर्जी पढना चाहता है और पढ भी सकता है, डिमिट्री चाहता तो है, लेकिन पढ नहीं सकता (लेकिन यह ठीक नहीं था) और लियो टॉल्स्टाय न तो चाहता ही है और न पढ़ ही सकता है (हॉ, मेरे विषय में यह बिल्कुल ठीक था) *

* लेकिन दूसरे स्थान पर टॉल्स्टाय ने इससे बिल्कुल उल्टी बात कही है और निकोलस को भी लपेट लिया है।

इस प्रकार डिमिट्री के विषय मे मेरी जानकारी कज़ान से आरम्भ हुई। वहाँ हर वात मे सर्जा का अनुकरण करते-करते मै विगडने लगा। उस समय और उसके पहले भी मुझे अपने वनाव-सिंगार की चिन्ता रहने लगी। मै चिकना-चुपड़ा दिखाई पड़ने का प्रयत्न करने लगा। डिमिट्री को ये बाते छू भी न गई थीं। मेरा तो खयाल है कि वह जवानी की वासनाओं से सदा दूर रहे। यद्यपि उनका स्वभाव तेज़ था परन्तु वह सदा गम्भीर, विचारवान्, शुद्ध और दृढ रहते थे, और वे जो काम करते थे उसे सारी शक्ति लगाकर करते थे। जब उन्होंने वह पीतल की जंज़ीर निगल ली थी, उस समय भी जहाँतक मुझे याद है, उसके विषय मे चिन्तित नहीं थे। इसके विपरीत मुझे याद है कि एक बार जब मैंने एक वेर की, जो मुझे 'आण्टी' ने दिया था, गुठली निगल ली थी तो मुझे कितना डर लगा था, और मैंने किस भयानकता से वह दुर्घटना अपनी माता से कही थी, मानों मैं मर ही रहा होऊँ। एक वार हम सब बच्चे एक पहाड़ी पर से टोबोगन (वर्फ पर फिसलने वाली लकड़ीकी चट्टियों) पर फिसल रहे थे, इतने मे एक आदमी आया और सड़क-सड़क जाने की वजाय एक 'ट्रॉयका' मे बैठकर पहाड़ी पर चढ आया। शायद सर्जी और एक ग्रामीण वालक उस समय फिसल कर नीचे आ रहे थे। वे अपने को रोक न सके और घोडे के पैरो के पास जाकर गिर पडे। हम तो ये सब वातें पहले से ही देख रहे थे, कि किस प्रकार वे घोडे के पैरो के नीचे से बचकर आये, किस प्रकार घोड़ा भड़क कर एक ओर को हटा, आदि आदि। लेकिन डिमिट्री, जिनकी आयु उस समय केवल ६ वर्ष की थी, उठकर सीधे उस आदमी के पास गये और उसे फटकारने लगे। जब उन्होंने उस आदमी से यह कहा कि ऐसी जगह गाड़ी चलाने पर, जहाँ कि कोई सड़क नहीं है तुम अस्तवल में भेजे जाने के योग्य हो, जिसका उस समय यह अर्थ था कि उसकी गहरी पिटाई (कोड़ों से) होनी चाहिए, उस समय मुझे आश्चर्य भी हुआ और वुरा भी लगा।

उनकी विशेषतायें तो पहले-पहल कज़ान मे ही मालूम हुई। वह लगकर बहुत अच्छी तरह पढते और बडी आसानी से कविता भी कर लेते थे। उन्होंने

शिलर की कविता 'डर जुंगलिंग एम बाशे' का बड़ा सुन्दर अनुवाद किया। लेकिन कविता के धन्धे मे उन्होने कभी अपने को नही लगाया। एक दिन वह बहुत ज्यादा मज़ाक करने लगे। इससे लडकियो को बडी खुशी हुई और उनका बडा मनोरंजन हुआ। इसपर मुझे उनसे कुछ ईर्ष्या हुई, क्योकि मैने खयाल किया कि लडकियाँ इसीलिए प्रसन्न है कि वह सदा गम्भीर रहते है, और उसी तरह उनकी नकल मे गम्भीर बनने की मेरी भी इच्छा हुई। मेरी बुवा और हमलोगो की संरक्षिका पेलागेया इलीनिश्ना को हमारी सेवा के लिए एक-एक ऐसा दास रखने की, जो बाद मे हमारा विश्वासपात्र नौकर हो सके, सनक उठी। डिमिट्री के लिए उन्होने एक दास वेनयूशा दिया जो कि अभी तक जीवित है। डिमिट्री उसके साथ बडा बुरा बर्ताव करते और मेरा खयाल है कि उसे पीटते तक थे। 'खयाल है', मैं इसलिए कहता हूँ कि मैंने उन्हे मारते पीटते तो कभी देखा नही, लेकिन मुझे याद है कि एक दिन वह वेनयूशा के सामने उसके प्रति किये गये व्यवहार के लिए पश्चात्ताप कर रहे थे और उससे नम्र शब्दो मे क्षमा मॉग रहे थे।

मुझे यह तो नही मालूम कि किस प्रकार या किसके प्रभाव से वह धार्मिक जीवन की ओर खिंचे, लेकिन उनका धार्मिक जीवन विद्यालय मे प्रविष्ट होने के पहले साल मे ही आरम्भ हो गया। धार्मिक जीवन की ओर प्रवृत्ति होने के कारण स्वभावत वह चर्च की ओर झुके और अपने स्वाभाविक अध्यवसाय के साथ धार्मिक साहित्य का अध्ययन करने लगे। वह बडा सादा भोजन करते, सब गिर्जों मे प्रार्थनाओ और उपदेशो के समय जाते। वह अधिकाधिक कठोर जीवन बिताने लगे।

डिमिट्री मे एक असाधारण गुण था और मुझे विश्वास है कि वह गुण मेरी माता और मेरे बडे भाई निकोलस मे भी था, लेकिन मुझमे बिल्कुल नही था। वह गुण यह था कि वह इस बात से पूर्णतया उदासीन रहते कि दूसरे लोग मेरे बारे मे क्या खयाल करते है। यहॉ तक कि अब बुढापे मे भी मुझे इस बात की चिन्ता रहती है कि दूसरे लोग मेरे बारे मे क्या

ख़याल करते हैं, लेकिन डिमिट्री इस चिन्ता से बिल्कुल मुक्त थे। जब कोई आदमी किसी की प्रशंसा करता है तो अनिच्छा होते हुए भी वह मुस्करा देता है। लेकिन मुझे याद नहीं कि मैंने कभी उनके मुख पर अपनी प्रशंसा सुनकर कोई मुस्कराहट देखी हो। मुझे तो उनकी बड़ी-बडी शान्त, गम्भीर और विचारशील आँखे ही याद हैं। केवल कज़ान विद्यालय मे रहने के समय ही हमने उनकी ओर विशेष ध्यान देना आरम्भ किया और वह भी इसलिए कि उस समय तक हम बाहरी बनाव-सँवार पर ज्यादा ज़ोर देने लगे थे और वह मैले-कुचैले और गन्दे रहते थे, जिसके कारण हम सदा उनकी निन्दा किया करते थे। वह न तो नाच देखने जाते और न नाच सीखना ही चाहते थे। एक विद्यार्थी के नाते वह अन्य विद्यार्थियों की गोष्ठी मे भी नहीं जाते थे। केवल एक कोट पहनते और गले मे पतला-सा तंग रूमाल बाँधते थे, मानो तग रूमाल से अपना पिण्ड छुडाने के लिए सदा अपना सिर घुमाते रहते थे।

जिस समय उन्होने उपासना (कम्युनियन) के निमित्त पहला उपवास किया। उस समय उनकी विशेषतायें पहली बार मालूम हुईं। उन्होंने यह उपवास विश्वविद्यालय के फ़ैशनेबुल गिर्जे मे न करके जेल के गिर्जे मे किया। उस समय हम जेल के ठीक सामने गोटालोव के मकान मे रहते थे। इस गिर्जे मे एक बडे धार्मिक और कट्टर पादरी थे। यह एक असाधारण बात थी, क्योंकि उस समय पादरी न तो धर्मिष्ठ होते थे और न धर्माचरण के नियमों का कडाई के साथ पालन ही करते थे। यह पादरी महोदय धार्मिक सप्ताह मे इन्जील तथा ईसामसीह व उनके अनुयायियों के ग्रन्थों का, जिनको पढने का यद्यपि शास्त्रों मे विधान है, परन्तु लोग जिन सब ग्रन्थों को कम ही पढते थे, आद्योपान्त पाठ करते थे। इसी कारण इस गिर्जे के उपदेश बडी देर मे समाप्त हुआ करते थे। डिमिट्री इन सब कथाओं और उपदेशों को खडे होकर सुना करते थे, उन्होने पादरी से भी जान-पहचान कर ली थी। गिर्जाघर इस प्रकार बना हुआ था कि गिर्जाघर और उस स्थान के बीच मे जहाँ कैदी खडे होकर उपदेश सुना करते थे, एक शीशे की दीवार

थी और उसमें एक छोटा सा दरवाज़ा था। एक बार उनमें से एक कैदी ने एक छोटे पादरी को कुछ देना चाहा। या तो वह मोमबत्ती थी या उसके लिए कुछ पैसे। कोई यह काम करने के लिए तैयार न हुआ, लेकिन डिमिट्री ने अपनी स्वाभाविक गम्भीर मुद्रा के साथ उसे उठा लिया और छोटे पादरी को दे दिया। यह काम ठीक नही था और इसके लिए उन्हे बुरा-भला भी कहा गया, लेकिन चूंकि वह समझते थे कि यह काम किया जाना चाहिए, अत वह दूसरे अवसरो पर भी यह काम करते रहे।

जब हम दूसरे मकान मे चले गये तब की एक घटना मुझे याद है। हमारे ऊपर के कमरे दो हिस्सो मे बॅटे हुए थे। एक भाग मे डिमिट्री रहते थे और दूसरे में सर्जी और मै। बड़े आदमियो के समान सर्जी और मुझे अपनी-अपनी मेज़ो पर आभूषण और चीजें, जो हमे भेंट मे मिलती थीं, सजाने का शौक था। लेकिन डिमिट्री के पास ऐसी कोई चीज नही थी। उन्होने पिताजी से केवल एक ही वस्तु ली थी और वह उनका धातुओ का संग्रह था। उन्होने उनको सजाकर और उन पर लेबिल लगाकर एक शीशे के ढक्कनवाले बक्स मे रख छोड़ा था। चूंकि हम भाइयो और हमारी बुआ डिमिट्री को उनकी इन निम्न प्रवृत्तियो, रुचियो और निम्न श्रेणी के परिचितो के कारण कुछ घृणा की दृष्टि से देखते थे, अत हमारे दम्भी मित्र भी उनके प्रति यही रुख रखते थे। उनमे से एक मित्र 'ऐस' था। यह एक इन्जीनियर था और बड़ी नीच प्रकृति का व्यक्ति था। इसे हमने मित्र नही बनाया था, मगर वह स्वयं हमारे पीछे पड़ा रहा और हमारा मित्र बन गया था। एक दिन वह डिमिट्री के कमरे के पास से निकला और उनका धातु-संग्रह देखकर उनसे एक प्रश्न कर दिया। ऐस का व्यवहार असहानुभूतिपूर्ण और अस्वाभाविक था। डिमिट्री ने उसके प्रश्न का अनिच्छा से उत्तर दिया। इस पर ऐस ने उस बक्स को सरकाया और ज़ोर से हिला दिया। डिमिट्री ने कहा—'उसे छोड़ दो।' ऐस ने उनकी बात न मानी और उनके साथ मज़ाक करते हुए शायद उन्हें 'नोह' के नाम से सम्बोधित किया। डिमिट्री को इस पर भीषण क्रोध आया और

उन्होंने ऐस के मुँह पर अपने भारी हाथ का एक थप्पड़ ज़ोर से मारा। ऐस भागा और डिमिट्री उसके पीछे पीछे भागे। जब डिमिट्री हमारी हद मे पहुँचे तो हमने ऐस को अन्दर लेकर दरवाजा बन्द कर दिया। इस पर डिमिट्री ने कहा कि अच्छा, जब ऐस वापस आयेगा, तब मैं उसे पीटूँगा। सर्जा और शायद शुवालोव डिमिट्री को मनाने के लिए भेजे गये कि वह ऐस को चला जाने दे, परन्तु वह तो झाड़ू लेकर बैठ गये और स्पष्ट कह दिया कि वह उसे बुरी तरह पीटेंगे। मुझे नही मालूम कि यदि ऐस उनके कमरे मे से जाता तो वह क्या करते, लेकिन उसने हमसे किसी दूसरे रास्ते से निकालने की प्रार्थना की और हमने उसे कमरे की छत के ऊपर की धूल से भरी हुई कैंची* मे से रेंग-रेंगकर निकाला।

टॉल्स्टाय की जीवनी मे उस घटना का वर्णन करते हुए जिसमें उन्होंने उस सिपाही के मुक़दमे की पैरवी की थी जिस पर अपने अफसर पर हाथ उठाने के अभियोग मे फाँसी की सजा देने के लिये मुकदमा चल रहा था, टॉल्स्टाय की जीवनी के लेखक बीरुकोव ने इस सम्बन्ध मे पूर्व-प्रकाशित विवरण से अधिक विवरण माँगा। उस पर टॉल्स्टाय ने उन्हे निम्न पत्र लिखा]

प्रिय मित्र पावेल इवानोविच,

तुम्हारी इच्छा पूरी करने और उस सिपाही की पैरवी करने के सम्बन्ध मे, जिसका तुमने अपनी पुस्तक मे उल्लेख किया है, मेरे क्या विचार थे इस पर पूरा प्रकाश डालने मे मुझे बडी प्रसन्नता है। भाग्य के उलट-फेरो, सम्पत्ति का विनाश या प्राप्ति, साहित्यिक जगत मे सफलता या असफलता नहीं नही अपने प्रिय से-प्रिय सम्बन्धियों की मृत्यु जैसी अधिक महत्वपूर्ण घटनाओं से भी अधिक उस घटना का मेरे जीवन पर प्रभाव पड़ा है।

मैं पहले तो यह बतलाऊँगा कि यह सब कैसे हुआ और उसके बाद यह बतलाऊँगा कि उस घटना के घटते समय और उसके बाद अब उसकी स्मृति से मेरे मन मे क्या-क्या भावनायें और विचार पैदा हुए।

---

* सबसे ऊपर के कमरे की छत पर कहीं कहीं दोनों ओर को ढालू टीन डाल दिया जाता है। टीन और छत के बीच की जो जगह होती है उसे कैंची कहते हैं।

मुझे यह याद नहीं कि उस समय मैं किस खास काम मे लगा हुआ था। शायद आप यह बात मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते होंगे। मुझे तो बस इतना ही याद है कि उस समय मैं एक शान्त, सन्तुष्ट और आत्माभिमान से पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था। सन् १८६६ की गर्मियो में हमारे पास सैनिक पाठशाला का एक विद्यार्थी ग्रीशा कोलोकोल्टमेव, जो वेहरों को जानता था और मेरी पत्नी का परिचित भी था, अचानक हमारे पास आया। मालूम हुआ कि वह सेना की एक टुकड़ी मे, जो हमारे पास ही पड़ाव डाले हुए थी, नौकर था। वह प्रसन्न-चित्त और अच्छे स्वभाव का लड़का था और उस समय अपने छोटे से कज्ज़ाक घोड़े पर उछल-उछलकर दौड़ने मे ही अपना समय लगाया करता, अक्सर हमारे पास भी आया करता था।

उसे धन्यवाद है कि उसके द्वारा हमारा उसकी टुकड़ी के सेनापति जनरल यू . और ए एम स्टासयूलेविच से परिचय हो गया। यह स्टासयूलेविच या तो पद मे घटा दिया गया था या किसी राजनीतिक मामले के कारण सैनिक की हैसियत मे काम करने को भेजा गया था। मुझे ठीक कारण याद नहीं है, पर इतना मालूम है कि वह प्रसिद्ध सम्पादक स्टासयूलेविच का भाई था। स्टासयूलेविच की जवानी वीत चुकी थी। जब हमारा परिचय हुआ उसी वक्त के करीब उसे एक सिपाही से तरक्की करके झण्डा ले जानेवाला बना दिया गया। वह अपने पुराने साथी यू. की सेना मे, जोकि अब उसका कर्नल था, आ गया था। यू और स्टासयूलेविच दोनों अक्सर घोड़ों पर चढकर हमारे पास आया करते थे। करनल यू हृष्ट-पुष्ट, लाल सुर्ख चेहरे और अच्छे स्वभाववाला कुछ उस प्रकार का अविवाहित व्यक्ति था जैसे कि साधारणतया होते है। उस उच्चपद और ऊँची सामाजिक स्थिति ने उसकी मानवी-प्रवृत्तियो को दबा दिया था। उस पद और मान को बनाये रखना उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था। एक मनुष्य की दृष्टि से यह कहना कठिन है कि ऐसा आदमी विवेकी या सज्जन है, क्योकि ऐसे मनुष्य के विषय मे कोई यह नहीं जानता कि यदि वह एक कर्नल या प्रोफेसर

या मन्त्री, या न्यायाधीश या एक पत्रकार न रहकर एक साधारण आदमी रह जाये तो कैसा होगा ? यही हाल केवल यू. .. का था। वह एक सेना की टुकड़ी का कार्यवाहक सेनापति था, लेकिन वह किस प्रकार का मनुष्य था, यह जानना असम्भव था। मेरा तो यह खयाल है कि वह अपने आपको भी न जानता होगा और न इसमे उसकी दिलचस्पी ही थी। स्टास यूलेविच इसके विपरीत था। यद्यपि अनेक प्रकार से, विशेपकर उसके दुर्भाग्य और अपमानो से, जो उस–जैसे महत्वाकाक्षी और आत्माभिमानी मनुष्य को वडे दु ख के साथ सहने पडे, उसका विनाश हो चुका था, परन्तु वह फिर भी जीवन से भरा हुआ मनुष्य था। कुछ दिनो वाद वह दिखाई ही नहीं पडा। जव उनकी सेना किसी दूसरे स्थान पर चली गई उस समय मैंने सुना कि उसने विना किसी व्यक्तिगत कारण के विचित्र रीति से आत्महत्या कर ली। एक दिन सवेरे उसने एक वहुत भारी फौजी ओवरकोट पहना और उसे पहनकर नदी मे उतर गया। चूँकि वह तैरना नहीं जानता था अत नदी मे डूबकर मर गया।

मुझे याद नहीं कि कोलोकोल्टसेव या स्टास यूलेविच दोनो मे से किसने गर्मा के दिनों मे एक दिन सवेरे आकर कोई घटना सुनाई जो कि सैनिको के लिए एक असाधारण और भयानक वात थी। एक सिपाही ने एक कम्पनी कमाण्डर को मारा। स्टास यूलेविच इस विषय पर ज़रा ज़ोर से वोल रहा था। उस सिपाही के भाग्य के फैसले (अर्थात् मृत्युदण्ड) के प्रति उसके हृदय मे सहानुभूति थी। उसने मुझे फौजी पचायत के सामने उस सिपाही की वकालत करने की सिफारिश की।

यहाँ पर मै यह कह देना चाहता हूँ कि मुझे इस वात को सुनकर कि एक आदमी जज वनकर किसी को मौत की सज़ा दे और दूसरा (अर्थात् वधिक) उसे मौत के घाट उतार दे, एक धक्का-सा ही नहीं लगता था, वल्कि मुझे यह एक असम्भव और गढी हुई वात मालूम पडती थी। ऐसा भीषण कृत्य जिसके सम्वन्ध मे यह जानते हुए भी कि वह पहले हो चुका है, और अव भी प्रतिदिन हो रहा है, आदमी विश्वास ही न कर सके। मृत्युदण्ड

मेरे लिए मनुष्य के उन कारनामो में से एक है, जिसकी असम्भवता मे मेरे हृदय मे अब भी विश्वास है।

मै जानता हूँ कि क्षणिक आवेश मे आने तथा घृणा और प्रतिहिसा के वशीभूत हो मानवी भावनाओ का नाश होने के कारण एक आदमी अपनी या अपने मित्र की आत्मरक्षा के लिए किसी को मार सकता है, अथवा युद्ध के समय सभी लोगो के साथ देश-भक्ति के नशे मे जिस समय मनुष्य मरने मारने के लिए कटिबद्ध होता है, उस समय वह एक साथ सहस्रो आदमियो के संहार में भाग ले सकता है। लेकिन यह बात मेरी समझ मे नही आती कि आदमी उस समय भी जबकि उनमे मानवीय गुण भरे होते है, शान्ति से और जानबूझकर अपने किसी साथी को मारने की आवश्यकता को स्वीकार कर सकते है। यह बात मेरी समझ मे उस समय भी नही आई थी। जबकि मै सन् १८६६ में अहंकारी जीवन व्यतीत कर रहा था। इसीलिए (शायद यह बात सुनकर सबको आश्चर्य हो) मैने आशाभरे हृदय से उस सिपाही की वकालत करने का निश्चय किया।

मुझे याद है आजेरकी गॉव मे पहुँचकर, जहॉ वह कैदी-सिपाही रक्खा गया था, (मुझे यह याद नहीं कि वह कोई खास मकान था या वह था जिसमे कि वह काण्ड हुआ था), मैं ईंटों की एक नीची छत की झोपड़ी मे घुसा, और एक ठिगने से आदमी से मिला। यह आदमी, लम्बा होने के बजाय हृष्ट-पुष्ट अधिक था, जोकि सिपाहियों के लिए एक असाधारण बात थी। उस आदमी की मुखाकृति बड़ी सरल अपरिवर्तनशील और शान्त थी। मुझे यह याद नही कि उस समय मेरे साथ दूसरा आदमी कौन था? परन्तु जहॉतक मुझे याद है वह कोलोकोल्टसेव था। जैसे ही हम घुसे वह आदमी फौजी ढंग से उठ खडा हुआ। मैने उससे कहा कि मै उसका वकील हूँ; अत उसे मुझसे सारी बात कहनी चाहिए कि वह घटना किस प्रकार घटी। उसने बहुत थोड़ी बात बताई और मेरे प्रत्येक प्रश्न के उत्तर मे बड़ी उदासीनता और अनिच्छा से यही उत्तर दिया—'हॉ, यही हुआ था।' उसके उत्तरो से तो यही निष्कर्ष निकलता था कि वह काम करने में जरा सुस्त था और

उसका कप्तान बडी कड़ाई से काम लेता था। उसने कहा—'उसने मुझसे बडा सख्त काम लिया'।

जैसा कि मैने समझा उसके यह काण्ड करने का कारण यही था कि कप्तान ने, जो बाहर से देखने मे बड़ा शान्त था, अपनी शान्त परन्तु उकतानेवाली भार-रूप आज्ञाएँ दे देकर और उन आज्ञाओ का विना ननु-नच किये पालन कराकर, उस आदमी को, जो कि केवल दफ्तर का एक अर्दली था, इतना उकता दिया, इतना उत्तेजित कर दिया कि वह सब्र की सारी सीमाओ को लॉघ गया, और उसकी हालत 'मरता क्या न करता' जैसी हो गई। मेरे विचार से उन दोनों मे अफ़सर और कर्मचारी के सम्बन्धों के साथ-साथ परस्पर एक-दूसरे के प्रति घृणा के सम्बन्ध भी स्थापित हो गये। जैसा कि बहुधा होता है, कम्पनी-कमाण्डर उस अर्दली के प्रति विरोध-भावना रखने लगा। उसे यह सन्देह हुआ कि अर्दली कमाण्डर से पोल जाति का होने के कारण घृणा करता है, अत यह विरोध-भावना और बढ गई। उसका अफसर होने का लाभ उठाकर उसने उसके हर काम से असन्तोष प्रगट करना और उस सब काम को, जिसे कि वह आदमी समझता था कि उसने ठीक किया है, दुबारा करने के लिए उसे बाध्य करना आरम्भ किया। अर्दली भी उससे पोल-जाति का होने, उसकी योग्यता को न मानने और सबसे अधिक उसकी शान्ति और कठोरता तथा ऊँचा अफसर होने के कारण कोई बात दिल खोलकर न कह सकने के कारण घृणा करता था। अपने भावो को प्रदर्शित करने का कभी अवसर न मिलने के कारण वह आग भीतर-ही-भीतर सुलगती और प्रत्येक डॉट-फटकार के साथ बढती गई। अपनी सीमा पर पहुॅचकर वह उस रूप मे भड़क उठी, जिसका कि उसने स्वप्न मे भी विचार नहीं किया होगा। तुमने जो मेरी जीवनी मे यह लिखा है कि वह आग कप्तान के कहने से कि वह उस आदमी की कोड़ो से खाल उधड़वा देगा, भभक उठी, ग़लत है। कप्तान ने उसे एक कागज़ वापिस दिया और उससे उसे ठीक करने और दुबारा लिखने के लिये कहा था (इसी पर सारा काण्ड हो गया)।

मेरी मुक्ति की कहानी

पंच शीघ्र ही नियत कर दिये गये। सरपंच कर्नल यू थे। कोलीकोल्टसेव तथा स्टासयूलेविच साधारण पंच थे। कैदी पंचों के सामने लाया गया, अदालती शिष्टाचार भुगताने के बाद (मुझे याद नहीं कि वह क्या था) मैंने अपना भाषण पढ़ा, जो अब मुझे केवल विचित्र ही नहीं लगता है, बल्कि मुझे लज्जा से भर देता है। पंचो ने भी केवल शिष्टाचार के नाते वे सब निरर्थक बातें, जो मैंने बहुत से ग्रन्थो का हवाला देते, कहीं, सुनी और सब कुछ सुनने के बाद आपस मे सलाह करने के लिये चले गये। उस पारस्परिक विचार-विनिमय के समय, जैसा कि मुझे बाद मे मालूम हुआ, केवल स्टासयूलेविच ही मेरे उस मूर्खतापूर्ण उद्धरण के पक्ष मे था जिसके आधार पर मैंने कहा था कि उस कैदी को इसलिए छोड़ दिया जाना चाहिए कि वह अपने काम के लिए उत्तरदायी नहीं है। सज्जन कोलोकोल्टसेव यद्यपि वही करना चाहता था जो कि मैंने कहा था, परन्तु अन्त मे वह कर्नल यू ' के सामने झुक गया और उसके वोट ने मामले का फ़ैसला कर दिया। सिपाही को गोली से उड़ाकर मारने की सज़ा सुना दी गई। मुकद्दमा समाप्त होने के बाद शीघ्र ही मैंने एक सम्भ्रान्त महिला एलेक्जेंड्रा एण्ड्रोव्ना टॉल्स्टाया को, जो मेरी घनिष्ट मित्र थीं और जिसकी राज-दरबार में पहुँच थी, सम्राट एलेक्जेण्डर द्वितीय से शिबूनिन को क्षमा-दान दिला देने के लिये लिखा। मैंने उसे लिखा तो सही, लेकिन चित्त-स्थिर न होने के कारण उस रेजीमेण्ट का, जिसमे कि यह मामला हुआ था, नाम देना भूल गया। उसने युद्ध-मन्त्री मिलयूटिन को भी लिखा, परन्तु उसने भी यही कहा कि उस रेजीमेण्ट का नाम दिये बिना सम्राट् के सामने आवेदन पत्र पेश करना असम्भव है। उसने मुझे लिखा। मैंने जल्दी-से-जल्दी उत्तर दिया। लेकिन रेजीमेण्ट के कप्तान को भी जल्दी थी, अत जिस समय तक सम्राट के सामने पेश करने के लिए आवेदन-पत्र तैयार हुआ उस समय तक उस सिपाही को गोली से उड़ा दिया गया। • •

उस सिपाही को बचाने के लिए मैंने जो उल्टा-सीधा, टूटा-फूटा और रद्दी भाषण दिया था और जिसे अब तुमने प्रकाशित किया है, उसे दुबारा

पढना मेरे लिये बहुत भयानक और आत्मा मे विद्रोह-सा पैदा करनेवाला है। उन दैवी और मानवी क़ानूनों के खुले तौर पर तोड़े जाने के उदाहरण देते हुए, जो मनुष्य अपने भाइयो के विरुद्ध प्रयोग करने के लिये बना रहे है, मैने उन्हीं कानूनो के कुछ मूर्खतापूर्ण शब्द कहे, जिन्हे किसी मनुष्य ने लिखकर कानून का रूप दे दिया।

वास्तव मे अब मै उस रद्दी और मूर्खतापूर्ण वकालत पर लज्जित हू। अगर एक आदमी यह जानता है कि किस प्रकार के आदमी क्या करने के लिए इकट्ठा हुए है और यह जानते हुए कि मेज़ के तीन तरफ अपनी वर्दी मे बैठे हुए ये आदमी क्यो इस समय इस कुर्सी (अर्थात न्यायाधीश के पद) पर आसीन है और क्यो ये उन शब्दो के लिए जो कुछ पुस्तको में लिखे हुए है और अनेक शीर्ष और उपशीर्षों के साथ कागज पर छपे हुए है, अनन्त ईश्वरीय कानून का जो यद्यपि किसी पुस्तक मे छपा हुआ नहीं है, परन्तु प्रत्येक मानव के हृदय पर अंकित है, तोड़ने को तैयार है, तब उनके सामने उन मूर्खतापूर्ण और झूठे शब्दो द्वारा (जिन्हे हम क़ानून कहते है) चतुरता से यह सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं कि किसी आदमी को मौत से मुक्त कर देना सम्भव है। उन्हे तो सिर्फ यह याद कराने की जरूरत है कि वे कौन हैं और क्या कर रहे है? हरएक आदमी यह जानता है कि प्रत्येक मनुष्य का जीवन पवित्र है: और किसी दूसरे आदमी को किसी के प्राण लेने का कोई अधिकार नहीं है। इसको सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसे किसी प्रमाण द्वारा सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। हॉ, केवल एक बात आवश्यक, सम्भव और ठीक है। वह यह कि आदमियों—जजों—को उस जड़ता से मुक्त करना जिसके कारण उनमे यह पाशविक और अमानुषिक विचार आता है। यह सिद्ध करना कि एक आदमी को दूसरे को मौत की सज़ा नहीं देनी चाहिए, यही सिद्ध करने के बराबर है कि एक आदमी को वह काम नहीं करना चाहिए। जो उसकी प्रकृति के प्रतिकूल और अन्तरात्मा के विरुद्ध हो। सरल शब्दो मे इसे यह कह सकते है कि एक आदमी को जाड़े मे नंगा नहीं फिरना

चाहिए, नैवेद्यदान की वस्तुओ को नही खाना चाहिए और चारो हाथ-पॉव नही चलाना चाहिए। लेकिन यह बात कि यह मनुष्य की प्रकृति के प्रतिकूल और आत्मा के विरुद्ध है, तो आज से वर्षों पूर्व उस स्त्री की कहानी द्वारा ही जिसे पत्थर मार-मारकर ही मार डाला गया, सिद्ध हो चुकी है।

और क्या आजकल यह सम्भव है कि मनुष्य (कर्नल यू और ग्रिशा कोलोकोल्टसेव) इतने न्याय-प्रिय है कि उन्हे पहला पत्थर हाथ से फेंक देने (दूसरो को अपराधी करार देने) मे कोई डर नही है।

उस समय मैं यह बात नही समझता था, उस समय भी नही जब मैने अपनी सम्बन्धिनी टॉल्स्टाया के द्वारा शिबूनिन को क्षमा दिलाने के लिए आवेदन-पत्र दिलाया। उस समय मै कितने भ्रम मे था कि शिबूनिन के साथ जो कुछ हुआ, वह एक साधारण-सी बात है, ऐसा तो होता ही रहता है। अपने उस भ्रम पर मुझे अब आश्चर्य हुए विना नहीं रह सकता।

उस समय मै ये सारी बातें नही समझता था। उस समय तो मेरे मन मे एक अस्पष्ट-सी भावना थी कि जो कुछ हो गया है वह नहीं होना चाहिए, और यह कि यह घटना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि इसका मानव-जाति की अन्य भूलो और पीडाओ से गहरा सम्बन्ध है और यह सबके मूल (जड़) में है। उस समय भी मेरे मन मे एक अस्पष्ट भावना थी कि मौत की सजा, जोकि जान-बूझकर, सोच विचारकर और पहले से निश्चय करके की गई, हत्या है, वह कृत्य है जोकि ईसाई धर्म के (जिसके कि हम अनुयायी है) खिलाफ़ है। वह एक विवेकी जीवन और नैतिकता को भंग करनेवाली चीज है। क्योंकि अगर एक आदमी, या कुछ आदमी मिलकर यह निश्चय करें कि एक आदमी को मौत के घाट उतारना आवश्यक है तो दूसरे आदमी या आदमियों को किसी आदमी को मार डालने की ज़रूरत को महसूस करने से कौन रोक सकता है ? और क्या उन आदमियों का जीवन विवेकी और नैतिक हो सकता है, जो अपनी इच्छानुसार एक दूसरे को मार सके ?

मै उस समय भी यह महसूस करता था कि धर्म और विज्ञान मौत की

सजा के लिए जो युक्तियाँ देते हैं, इनके द्वारा हिंसा करने की न्यायोचितता को सिद्ध करने के स्थान पर उल्टे धर्म और विज्ञान का खोखलापन ही सिद्ध होता है। मुझे यह अनुभव पहली बार पेरिस मे हुआ, जबकि मैंने एक फाँसी का दृश्य दूर से देखा* . परन्तु उसके सम्बन्ध मे मेरे मन में उस समय जोरदार भावनायें उठीं, जब मैंने इस मामले मे भाग लिया। परन्तु इस समय भी मुझे अपने विश्वास करने मे और अपने को संसार के निर्णय से अलग करने मे डर लगता था। बहुत दिनों के बाद मुझे अपनी धारणाओं मे विश्वास करना पड़ा और उन दो भयानक भ्रमों को (अर्थात् एक चर्च का और दूसरा विज्ञान) जिनकी मुट्ठी मे सारा ससार है, और जो वे सब पीडायें और उत्पीडन पैदा करते हैं, जिनसे मानव-जाति कष्ट पा रही है, मानने से इन्कार करना पडा। बहुत दिनों बाद जब मैंने उन युक्तियो को ध्यान से अध्ययन करना आरम्भ किया जो 'चर्च' (धर्म-सस्था) और विज्ञान आजकल के राजतन्त्र के समर्थन मे दिया करते है, तब मैं उन दो बडे जालों (धोखों) को स्पष्ट जान गया, जिनके द्वारा वे राज्य की काली-करतूतों पर परदा डालना और उन्हे जनता से छिपाना चाहते हैं। मैंने धार्मिक ग्रन्थों और विज्ञान की पुस्तकों, जो लाखो और करोड़ो की संख्या मे बिकती हैं, उन लम्बे-लम्बे अध्यायों को पढा है जिनमे कुछ आदमियो की इच्छानुसार दूसरों को फाँसी पर चढा देने के औचित्य और आवश्यकता की सफाई पेश की गई है।

दोनों प्रकार के वैज्ञानिक ग्रन्थो मे अर्थात् न्याय-शास्त्र (जूरिस्प्रुडेन्स) जिसमें फौजदारी कानून भी शामिल हैं और विशुद्ध विज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थो मे—उसी बात पर अधिक सकुचितता और विश्वास के साथ युक्तियाँ दी गई है। फौजदारी कानून के सम्बन्ध में तो कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं है। वह तो सफेद झूठ, छल और प्रपंचों का एक क्रमागत इतिहास ही है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य पर किये गये सभी प्रकार के हिंसात्मक कामों को,

* यह घटना सन् १८५७ की है और 'कनफेशन' के १२ वें पृष्ठ पर उसका वर्णन किया गया है।

यहाँ तन्त्र कि मनुष्य द्वारा मनुष्य की हत्या को भी, न्यायोचित ठहराती है। यही नही, वैज्ञानिक ग्रन्थो मे भी डार्विन से लेकर अब तक, जो जीवन के सघर्ष को जीवन का आधार मानता है, यही बात निहित है। जेना विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर अर्नेस्ट हेकेल जैसे उस सिद्धान्त के जबर्दस्त समर्थक अपनी पुस्तक सन्देहवादियो की गीता (Naturliche Schopfungsgeschichte) मे स्पष्ट लिखते है —

"मानव-जाति के सास्कृतिक जीवन में कृत्रिम चुनाव बहुत लाभदायक प्रभाव डालता है। उदाहरण के लिए अच्छी स्कूली शिक्षा और लालन-पालन का सस्कृति की अनेकमुखी प्रगति में कितना भारी स्थान है। यद्यपि आजकल बहुत से आदमी मौत की सज़ा को उदार भाव से उड़ा देने की बडे ज़ोर-शोर और उत्साह से वकालत कर रहे है, और मानवता के थोथे नाम पर अपने पक्ष मे बहुत-सी युक्तियाँ दे रहे है, लेकिन इसी प्रकार मौत की सज़ा भी ऐसा ही लाभदायक प्रभाव डालती है। जिस प्रकार एक सुन्दर उद्यान को बनाये रखने के लिए घास-फूस और झाड़-झंखाड़ को उखाड़कर फेकते रहने की आवश्यकता है, उसी प्रकार उन बहुसख्यक अपराधियो और बदमाशो के लिए, जो कभी ठीक ही नही हो सकते, मौत की सज़ा केवल ठीक इनाम ही नही है बल्कि शेष सभ्य व संस्कृत मानव-जाति के लिए बडे लाभ की चीज़ है। जिस प्रकार घास-फूस को ठीक से साफ़ करने पर पेड़ो और पौधो को अधिक वायु, प्रकाश और बढने के लिए जगह मिलती है, ठीक उसी प्रकार सब कठोर अपराधियो को एक साथ मिटा देने से शेष मानव-जाति के जीवन का संघर्ष ही कम नही हो जायेगा, बल्कि एक कृत्रिम चुनाव पैदा करेगा, जोकि उसके लिए लाभदायक होगा, क्योंकि इसी प्रकार तो मानव-जाति का वह पतित अंश (कूड़ा) शेष मानव-जाति पर अपने दुर्गुणो का प्रभाव न डाल सकेगा।"

खेद है कि मनुष्य ऐसी बातो को पढते हैं, पढाते है और उसे ज्ञान-विज्ञान के नाम से पुकारते हैं। लेकिन किसी के दिमाग मे यह प्रश्न नहीं उठता कि यह मानते हुए भी कि खराब आदमियो को मार डालना अच्छा

है, अच्छे और बुरे का निर्णय कौन करेगा ? मेरा ही उदाहरण लीजिए। मै समझता हूँ कि मि० हैकल से ज्यादा बुरा और ज्यादा हानिकारक आदमी ससार मे दूसरा नही है। लेकिन क्या इसका यह मतलब है कि मैं अथवा मेरे-जैसे विचार रखने वाले और आदमी मि० हैकल को फाँसी की सज़ा दे दें ? नहीं, जितनी ही बड़ी उनकी (मि० हैकल की) भूल होगी मै चाहूँगा कि वह उतने ही अधिक विवेकी और युक्ति-युक्त हो। किसी भी दशा मे मैं उन्हें ऐसा विवेकी और युक्ति-युक्त बनने देने के अवसर से वञ्चित नहीं कर सकता।

चर्च और विज्ञान के मिथ्यावाद ने ही आज हमे उस परिस्थिति (गढे) मे डाल रखा है, जिसमें कि हम है। महीने ही नहीं, सैकड़ो वर्ष गुज़र गये, जिनमें एक भी दिन ऐसा न गया जिस दिन फाँसियाँ और हत्याये न हुई हो। कुछ आदमी उस समय प्रसन्न होते हैं, जबकि क्रान्तिकारियों की अपेक्षा सरकार द्वारा अधिक आदमी मरवाये जाते है। दूसरे आदमी तब प्रसन्न होते है, जब बहुत से सेनापति, भूमिपति, व्यापारी, और पुलिसवाले मारे जाते हैं। एक ओर तो हत्या करनेवालों को पकड़ने के लिये १०-१५ और २५ रूबल इनाम की घोषणा की जाती है और दूसरी ओर क्रान्तिकारियो, हत्यारो और जबर्दस्ती सम्पत्ति छीननेवालो का आदर और मान करते हैं और उन्हे 'वीर' और 'देश पर मर मिटनेवाले' की पदवी देते है। "उन आदमियो से मत डरो जो शरीर का नाश करते है बल्कि उनसे डरो जो शरीर और आत्मा दोनों का विनाश कर देते है।"

इन सब बातो को मैंने बाद में समझा, परन्तु इनकी एक अस्पष्ट-सी अनुभूति मेरे मन मे उस समय भी थी, जबकि मैने इतनी मूर्खतापूर्ण और लज्जाजनक रीति से उस अभागे सिपाही की वकालत की। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि मेरे जीवन पर उस घटना का भारी प्रभाव पड़ा है।

हाँ, मैं कहता हूँ कि उस घटना का मेरे जीवन पर बहुत अच्छा और बडा लाभदायक प्रभाव पड़ा है। उसी समय मैने पहली बार यह अनुभव किया कि प्रत्येक प्रकार की हिसा की पूर्ति में हत्या की या हत्या की धमकी

छुपी हुई है, इसलिए प्रत्येक प्रकार की हिंसा हत्या के साथ जुड़ी हुई है। दूसरे यह कि राज्य-शासन की कल्पना बिना हत्या के नहीं हो सकती और इसीलिए वह ईसाई-धर्म के साथ मेल नहीं खाती। तीसरे यह कि जिस प्रकार पहले धर्माधीशों के उपदेश हुआ करते थे, उसी प्रकार हम आज जिसे विज्ञान कहते है, वह वर्तमान बुराइयों की एक झूठी वकालत के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

इस समय यह बात मुझे बिल्कुल स्पष्ट है, परन्तु उस समय तो वह उस मिथ्यावाद की, जिसके बीच मे अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, एक धुँधली-सी झलक मात्र थी।

यास्नाया पोल्याना,
२४ मई, १६०८

लियो टॉल्स्टॉय

मुद्रक — श्रीनाथदास अग्रवाल, टाइम-टेबुल प्रेस, बनारस।

सस्ता साहित्य मण्डल की
'सर्वोदय साहित्य माला' के प्रकाशन

[नोट—* चिन्हित पुस्तकें अप्राप्य हैं]

१ दिव्य-जीवन ।=)
२. जीवन-साहित्य १)
३. तामिल वेद ॥।)
४. भारत में व्यसन और व्यभिचार ।॥=)
५. सामाजिक कुरीतियाँ* ।॥)
६. भारत के स्त्री-रत्न ३)
७. अनोखा १।=)
८. ब्रह्मचर्य-विज्ञान ।॥=)
९ यूरोप का इतिहास २)
१० समाज-विज्ञान ॥।)
११. खद्दर का संपत्ति-शास्त्र* ॥।≡)
१२ गोरों का प्रभुत्व* ।॥=)
१३. चीन की आवाज़* ।-)
१४. द. अ. का सत्याग्रह १।)
१५. विजयी बारडोली* २)
१६. अनीति की राह पर ॥=)
१७. सीताकी अग्निपरीक्षा ।-)
१८. कन्या-शिक्षा ।)
१९. कर्मयोग ।=)
२०. कलवार की करतूत =)
२१. व्यावहारिक सभ्यता ॥)
२२ अँधेरे में उजाला ॥)
२३. स्वामीजीका बलिदान* ।-)
२४. हमारे जमाने की गुलामी* ।)
२५. स्त्री और पुरुष ॥)
२६. सफाई ।=)
२७. क्या करें ? १)
२८. हाथकी कताई-बुनाई* ॥-)
२९. आत्मोपदेश* ।)
३०. यथार्थ आदर्श जीवन* ।॥-)
३१. जब अंग्रेज नहीं आये थे ।)
३२. गंगा गोविन्दसिंह* ॥=)
३३. श्री रामचरित्र १।)
३४. आश्रम-हरिणी* ।)
३५. हिंदी मराठी कोष* २)
३६. स्वाधीनताके सिद्धान्त* ॥)
३७. महान् मातृत्वकी ओर ।॥=)
३८. शिवाजी की योग्यता ।=)
३९. तरंगित हृदय* ॥)
४० हालैण्ड की राज्यक्रान्ति १॥)
४१. दुखी दुनिया ।=)
४२. जिन्दा लाश* ॥)
४३. आत्मकथा [नवीन सस्ता संस्करण] १), १॥)
,, [संक्षिप्त संस्करण] ॥)
४४ जब अंग्रेज आये* १।=)
४५. जीवन-विकास १।)
४६ किसानों का बिगुल =)
४७. फांसी ।=)
४८. अनासक्तियोग और गीताबोध ।=)

४९. स्वर्ण विहान: |=)
५०. मराठों का उत्थान और पतन २॥)
५१. भाई के पत्र १)
५२. स्वगत* |=)
५३. युगधर्म* १=)
५४. स्त्री-समस्या १|||)
५५. विदेशी कपड़े का मुकाबिला* ||=)
५६. चित्रपट |=)
५७. राष्ट्रवाणी* ||=)
५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी |||)
५९. भावी क्रांति का संगठन (रोटी का सवाल) |||)
६० दैवी संपद् |=)
६१ जीवन-सूत्र |||)
६२. हमारा कलंक ||=)
६३. बुद्बुद् ||)
६४. संघर्ष या सहयोग ? १||)
६५ गांधी-विचार-दोहन |||)
६६. एशिया की क्रान्ति* १|||)
६७ हमारे राष्ट्र-निर्माता १||)
६८. स्वतंत्रता की ओर १||)
६९. आगे बढ़ो ||)
७०. बुद्धवाणी ||=)
७१. कॉंग्रेसका इतिहास २||) |–)
७२. हमारे राष्ट्रपति १)
७३. मेरी कहानी २||) |)
७४. विश्व-इतिहास की झलक ८) =)
७५. हमारी पुत्रियाँ कैसी हों ? ||)
७६. नया शासन विधान |||)
७७. [१]हमारे गाँवोंकीकहानी ||)
७८. [२]महाभारत के पात्र १-२ ||) ||)
७९ गाँवोंका सुधार-संगठन १)
८०. [३] सतवाणी ||)
८१. विनाश या इलाज ? |||)
८२. [४] अंग्रेजी राज्य में हमारी दशा ||)
८३. [५] लोक-जीवन ||)
८४ गीता-मंथन १||)
८५. [६]राजनीति प्रवेशिका ||)
८६. [७] हमारे अधिकार और कर्तव्य ||)
८७. गांधीवाद: समाजवाद |||)
८८. स्वदेशी: ग्रामोद्योग ||)
८९. [८] सुगम चिकित्सा ||)
९०. प्रेम में भगवान् ||)
९१ महात्मा गांधी |=)
९२. [१०] हमारे गाँव और किसान ||)
९३. ब्रह्मचर्य ||)
९४. गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ २)
९५ हिन्दुस्तान की समस्यायें १)
९६. जीवन-संदेश ||)
९७. समन्वय २)
९८. समाजवाद : पूँजीवाद |||)
९९. मेरी मुक्ति की कहानी ||)

नोट — ब्रैकेट-नम्बर लगी पुस्तकें 'लोक साहित्य माला' की है।